chapter-5

:: अध्याय : पांच ::

:: विविध विषयों पर ओशो के विचार ::

:: अध्याय : पांच ::

============

## :: विविध विषयों पर ओशो के विचार ::

**प्रास्ताविक :**

ओशो-साहित्य से जब हम गुजरते हैं तब हमारा साक्षात्कार अनेक विषयों से होता है। पहले कहा गया है कि साहित्य समाज का मुख और मस्तिष्क दोनों है। मुख के द्वारा हम अपनी समस्याओं को, अपनी व्यथा को, अपने प्रश्नों को अभिव्यक्त कर सकते हैं। ठीक उसी प्रकार साहित्य भी समाज के प्रश्नों को, समाज की समस्याओं को उठाता है। यहां पर वह मुख की भूमिका अदा करता है। परंतु इतने मात्र से साहित्य के महत उत्तरदायित्व की पूर्ति नहीं हो जाती, क्योंकि मुख के साथ-साथ साहित्य समाज का मस्तिष्क भी है। अतः हर प्रश्न पर वह सोच-विचार करता है, हर समस्या पर सोचता है और उसका कोई हल निकालने की कोशिश करता है। ओशो का साहित्य अधिकांशतः

व्याख्यान या लेख के स्वरूप में है , कुछ साहित्य वार्ता-रूप में या पत्र-रूप में भी है । परंतु इन तमाम साहित्य रूपों में ओशो ने जीवन और जगत पर अपने ढंग से विचार व्यक्त किये हैं । उनके विचारों में एक प्रकार की नवीनता , स्फूर्ति या ताजगी का अनुभव हमें होता है । एक नया दृष्टिकोण हमें प्राप्त होता है । इस अध्याय में हम ऐसे कई विषयों की चर्चा करने जा रहे हैं जिन पर ओशो रजनीश ने नये ढंग से , आधुनिक ढंग से , विचार किया है ।धर्म , धार्मिकता , आध्यात्मिकता , भगवत्ता , राजनीति , मनोविज्ञान , गांधी , आंबेडकर , नेहरू , चर्चिल , हिटलर , माओ , मार्क्स , महावीर , बुद्ध , क्राइस्ट , मुहम्मद , कृष्ण , नानक , जरथुस्त्र , जैन धर्म , बौद्ध धर्म , झेन साधु , सूफी मत , इस्लाम , इसाइयत , निराकार-साकार चर्चा , देश की अन्न-समस्या , देश की आर्थिक समस्या , भाषा समस्या , आबादी की समस्या , काम की समस्या , नारी-चेतना , नारी और मातृत्व , प्रेम-विवाह , शिक्षा-समस्या , अध्यापकों की समस्या , जैसे देश तथा विश्व के अनेक सनातन तथा सामयिक विषयों पर ओशो ने अपने मौलिक विचारों को रखा है । ओशो के चिंतन में एक नया मोड़ , एक नयी दृष्टि , एक नयी चेतना , एक नया तरीका हमारे सामने आता है । वे सदैव गतानुगतिकता को चुनौती देते रहे हैं । यह उनकी विशेषता है कि वे किसी भी बात को एक नये अंदाज से देखते हैं । भीड़ का अंग नहीं बनते ।

## भारत : समस्याओं का ढेर :

हमारा देश अनेक समस्याओं का ढेर-सा होता जा रहा है । हम बार-बार अतीत गौरव की ओर प्रत्यावर्तन करते हैं । और हमारा अतीत भी काफी सुदीर्घ है । अब कई बातें देशकाल-सापेक्ष होती हैं । किसी समय-विशेष में उसकी उपादेयता हो सकती है , परंतु समय और स्थितियों के बदल जाने पर उसकी सार्थकता पर प्रश्न-चिह्न

लग जाते हैं । किसी समय "शत पुत्रो भव " आशीर्वाद हो सकता था , परंतु आज के युग में वह अभिशाप हो जायेगा । ओशो इस संदर्भ में कहते हैं :

"भारत समस्याओं से और प्रश्नों से भरा है । और सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि हमारे पास उत्तरों की और समाधानों की कोई कमी नहीं है । शायद जितने प्रश्न हैं हमारे पास , उससे ज्यादा उत्तर हैं और जितनी समस्याएं हैं , उससे ज्यादा समाधान हैं । लेकिन एक भी समस्या का कोई समाधान हमारे पास नहीं है । समाधान बहुत हैं , लेकिन सब समाधान मरे हुए हैं और समस्याएं जिन्दा हैं । उनके बीच कोई तालमेल नहीं है । मरे हुए उत्तर हैं और जीवन्त प्रश्न हैं । जिन्दा प्रश्न हैं और मरे हुए उत्तर हैं । और जैसे मरे हुए आदमी और जिन्दा आदमी के बीच कोई बातचीत नहीं हो सकती , ऐसे ही हमारे समाधानों और हमारी समस्याओं के बीच कोई बातचीत नहीं हो सकती । एक तरफ समाधानों का ढेर है , और एक तरफ समस्याओं का ढेर है । और दोनों के बीच कोई सेतु नहीं है , क्योंकि सेतु हो ही नहीं सकता । मरे हुए उत्तर जिस कौम के पास बहुत हो जाते हैं , उस कौम को नये उत्तर खोजने की कठिनाई हो जाती है । " [1]

इसमें हम एक बुनियादी भूल जो कर रहे हैं वह यह है कि हमारे पास उत्तर सब पुराने हैं और नये प्रश्न तो नये उत्तर की अपेक्षा करेंगे । हमने नयी समस्याओं के लिए नये उत्तर खोजना बन्द कर दिया है । नयी समस्याएं नये समाधान चाहती हैं , बने-बनाये पुराने फार्मूला वहां काम नहीं आ सकते । नयी परि-स्थितियां नयी चेतना को चुनौती देती हैं , परंतु हम पुराने होने को लेकर बुरी तरह से बचकाना ढंग से जिदिया रहे हैं ।

हमारी धार्मिक तंगदस्ती तथा कौमी दंगों की राजनीति पर ओशो कहते हैं : " रामचन्द्र को गांधीजी ने कुछ पत्र लिखे थे । और गांधीजी ने एक पत्र में उनसे पूछा है कि आप जैन धर्म को श्रेष्ठ मानते हैं ? रामचन्द्र जैसे बुद्धिमान , विचारशील साधु पुरूष ने भी यही उत्तर दिया कि जैन धर्म ही श्रेष्ठ है , इसलिए मैं श्रेष्ठ मानता हूं । गांधीजी भी हिन्दू धर्म को श्रेष्ठ धर्म मानते थे । अभी मैंने सुना है कि जयप्रकाश ने यहां अहमदाबाद में कहा कि मैं हिन्दू हूं और हिन्दू होने का मुझे गौरव है । खतरनाक लोग हैं ये । क्योंकि जो यह कहता है कि , जो यह कहता है कि जैन धर्म श्रेष्ठ है , जो यह कहता है कि मैं हिन्दू होने की वजह से गौरवान्वित हूं , वह उपद्रव के बीज बो रहा है -- चाहे उसे पता हो चाहे उसे पता न हो । क्योंकि जो यह कह रहा है हिन्दू धर्म श्रेष्ठ है वह हिन्दू के अहंकार को फुसला रहा है , वह हिन्दू के अहंकार को रस दे रहा है और हिन्दू के अहंकार को कह रहा है कि , हां , हम श्रेष्ठ हैं । और जो यह कह रहा है कि इस्लाम श्रेष्ठ है वह इस्लाम के अहंकार को फुसला रहा है । और जो जैन धर्म को श्रेष्ठ कह रहा है वह भी फुसला रहा है । और जो कह रहा है कि मैं गौरवान्वित हूं हिन्दू होकर , मुझे गौरव है कि मैं हिन्दू हूं , वह दूसरे लोगों को भी हिन्दू होने के अभिमान से भर रहा है । और जहां हिन्दू का अहंकार है , जहां मुसलमान का अहंकार है , वहां शांति नहीं हो सकती । वहां कोई शांति संभव नहीं है । " [2]

एक शेर में कहा गया है : " दुनिया में कोई काम यों ही नहीं होता है ; टकरायेंगे अहं जब सीता का हरण होगा । " अभिमान और अहंकार के अहं जब टकराते हैं , तब शांति और अहिंसा रूपी xxx सीता का हरण तो होगा ही । रात-दिन हम अभिमान को पोषते रहेंगे , रात-दिन घृणा और नफरत की खेती करते रहेंगे तो अमन की फसलें कैसे काट सकते हैं ? जो बोयेंगे , वही पायेंगे । नफरत बोयेंगे , नफरत पायेंगे । प्यार बोयेंगे , प्यार पायेंगे । और प्यार

और अभिमान में तो छत्तीस का रिश्ता है । इस संदर्भ में ओशो के विचार ध्यातव्य रहेंगे :

"इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जब हिन्दू मुस्लिम दंगे होते हैं तो आमतौर से हम यह समझकर कि गुण्डे दंगे कर रहे हैं, गुण्डों को गालियां दे लेते हैं और घरों में बैठ जाते हैं । मैं आपसे कहता हूं, बहुत समय हो गया है, गुण्डों को अब ज्यादा गालियां मत दें । और पकड़ना हो तो महात्माओं को पकड़ें, गुण्डों को पकड़ने से कुछ नहीं होता है । गुण्डे समस्या नहीं हैं, महात्मा समस्या हैं । लेकिन महात्मा अमन कमेटी xxxxxx बनाते हैं, शांति की व्यवस्था करते हैं, प्रवचन देते हैं, लोगों को समझाते हैं, लड़ो मत । तो ऐसा समझ में आता है कि महात्मा तो बेचारा समझा रहा है, लड़ता तो गुण्डा है । लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं, बहुत पुरानी हो गयी यह बात । यह बात सही नहीं मालूम पड़ती, क्योंकि महात्माओं की कोई कमी नहीं है । शायद गुण्डों से ज्यादा ही होंगे । लेकिन कोई कमी नहीं होती युद्ध में, संघर्ष में, वैमनस्य में, ईर्ष्या में, घृणा में । नहीं, कहीं कुछ भूल हो रही है । गुण्डे को हम व्यर्थ ही पकड़ रहे हैं । वह महात्मा की तरकीब है । मैं आपसे कहना चाहता हूं, महात्मा जड़ में है । क्योंकि महात्मा कहता है कि मैं हिन्दू होकर गौरवान्वित हूं । वह हिन्दू के अहंकार को मजबूत कर रहा है । वह महात्मा कह रहा है कि मैं हिन्दू हूं, वह महात्मा कह रहा है कि मैं मुसलमान हूं । तब फिर उपद्रव जारी है । .... खान अब्दुल गफ्फार खान यहां आये । सारे मुल्क में गये । लेकिन वे पक्के मुसलमान हैं । और मैं कहना चाहता हूं कि पक्का मुसलमान होना खतरनाक है । खतरनाक इसलिए है कि आदमी को आदमी होने दो, मुसलमान होना खतरनाक है । खतरनाक इसलिए है कि आदमी को आदमी होने दो, मुसलमान और हिन्दू मत बनाओ । कृपा करो, अब आदमी आदमी ही हो जाये

तो ही दंगे बन्द हो सकते हैं । अन्यथा दंगे बन्द नहीं हो सकते ।" [3]
एक कवि-सम्मेलन में सुनी नीरज की पंक्तियां यहां स्मृति में कौंध रही हैं : "आदमी को आदमी बनाने के लिए, प्यार भरी कोई कहानी चाहिए, और प्यार की उस कहानी के लिए, स्याही नहीं आंखों-वाला पानी चाहिए । " हम आदमी नहीं रहे क्योंकि आंखों का वह पानी ही सूख गया ।

यह पहले कहा गया है कि वस्तुतः हमारे सामने समस्याओं का अंबार इसलिए लग गया है कि हम किसी भी समस्या को उसकी युग-सापेक्षता में देखने के आदी ही नहीं है । धर्मशास्त्र और उसके ग्रन्थ किसी समय के समाजशास्त्र के ग्रन्थ ही रहे होंगे, और रही होंगी आवश्यकताएं किसी समय में वैसी । परंतु समय-समय पर उसमें परिवर्तन होने चाहिए । अशोक और कनिष्क के समय में ऐसी कई धर्म-परिषदों का उल्लेख मिलता है, जिनमें परिवर्तित स्थितियों में धर्म के नीति-नियमों पर पुनर्विचार की बातें कही गयीं हैं । इस संदर्भ में एक स्थान पर ओशो व्यंग्य करते हुए कहते हैं :

"उस आदमी को हम पागल कहेंगे, जो आदमी बैलगाड़ी को लेकर हवाई जहाज में सवार होने की कोशिश कर रहा है । लेकिन हम सब पिछली सदियों को लेकर बीसवीं सदी में जीने की कोशिश कर रहे हैं । उन दोनों बातों में बहुत भेद नहीं है । पिछली सदियों को विदा हो जाना चाहिए । चौदह सौ साल पहले इस्लाम पैदा हुआ था । वह चौदह सौ साल पहले अरब की हालतों में उसका कोई सन्दर्भ, उसका कोई अर्थ रहा होगा ; कोई संगति, कोई रिलेवेंस रही होगी । आज उसकी कोई रिलेवेंस नहीं है । .... हिन्दू धर्म पांच हजार साल पहले पैदा हुआ था । पांच हजार साल की पुरानी दुनिया में उसका कोई अर्थ रहा होगा । जब बिजली चमकती होगी तो डर लगता होगा और इन्द्र की पूजा की गयी होगी । अर्थात् मन को राहत मिली थी, रात हम निश्चिंत सो सके थे कि इन्द्र

को समझा दिया है, नारियल भी फोड़ दिया है। रात कम से कम हमारा घर सुरक्षित रहेगा। लेकिन आज कोई रिलेवेंस नहीं है। लेकिन आज भी बीसवीं सदी में यज्ञ किया जा रहा है, इन्द्र की पूजा की जा रही है, पानी बरसे, इसके लिए इन्द्र से प्रार्थना की जा रही है कि हवाई×जहाज×को×लेकर× बैलगाड़ी को लेकर हवाई जहाज में चढ़ने की कोशिश।" [4]

इधर हमारे देश में सभी रातों-रात अमीर हो जाना चाहते हैं। इसके लिए गलत-सलत रास्ते अपना रहे हैं। इसके कारणों की मीमांसा करते हुए ओशो कहते हैं :

"हिन्दुस्तान तीन हजार साल से दुख की शिक्षा दे रहा है कि दुख का वरण करो। इसलिए यहां एक उपद्रव पैदा हो गया है। वह उपद्रव यह है कि जब तक हम गुलाम थे तब तक तो ठीक था। अब हम स्वतंत्र हो गये हैं। अब हम सबको सुख की एक पागल दौड़ शुरू हुई है, जो बिलकुल ही फैनेटिक है। क्योंकि हमने इतने दिन तक दुख का वरण करने की चेष्टा की है, अब सब बांध तोड़कर सुख की तरफ दौड़ रहे हैं। अब सब बांध तोड़ दिये। अब सुख चाहे दूसरे को दुख देने से मिले तो भी हम लेने को तैयार हैं। हमने इतने दिन तक गरीबी को पकड़ने की, आदर देने की कोशिश की है, अब हम अमीरी की तरफ पागल हो गये हैं।" [5]

चर्चिल कहते थे कि गांधी की गरीबी भी महंगी होती थी। राजेन्द्र बाबू जब राष्ट्रपति बने तो राष्ट्रपति भवन में उनके सोने के कमरे में चटाइयां बिछा दी गयीं। बाकी सब तो वैसा ही रहा। कमरे उतने ही रहे, नौकर उतने ही रहे। चटाइयां आ गयीं। इस ओर इशारा करते हुए ओशो कहते हैं : "हिन्दुस्तान की एक जलती समस्या है पाखण्ड। सब तरह का पाखण्ड। जो आदमी

पक्का अहंकारी है, वह हाथ जोड़कर कहता है, मैं तो कुछ भी नहीं हूं, आपके पैर की धूल हूं। जरा उसकी आंखों में देखें। वह ऐसा लग रहा है कि अगर मौका मिल जाये तो आपको अभी पैर के नीचे दबा दे। लेकिन वह कह रहा है कि मैं विनम्र हूं, मैं सेवक आदमी हूं, मैं आपके पैर की धूल हूं। यह हम पाखण्ड सिखा रहे हैं। वह आदमी भीतर तिजोरी बड़ी करता जा रहा है और वस्त्र सादे पहने हुए हैं। वह पैदल चल रहा है और महल बड़ा किये जा रहा है। वह योरोप और अमरीका के बैंकों में धन इकट्ठा कर रहा है और यहां बैठकर चर्खा कात रहा है। बहुत अजीब मामला है। यह भारत का जलता हुआ प्रश्न है, हिपोक्रेसी, पाखण्ड। हर आदमी पाखण्ड के साथ खड़ा हो गया है।" 6

अपने देश की समस्याओं और उसके समाधानों पर विचार करते हुए ओशो ने जो कहा है वह ध्यान देने योग्य है : "समस्याएं बहुत बड़ी नहीं है। जिंदगी के साथ प्रश्न होते ही हैं और जिन्हें जीना है उन्हें प्रश्न हल करने ही पड़ते हैं। हमारा कोई प्रश्न बहुत बड़ा नहीं है, न हमारी गरीबी का प्रश्न बहुत बड़ा है; अगर हमारे पुराने समाधान छोड़े जा सकें तो गरीबी इस देश की भी मिट सकती है। न हमारी नैतिकता का प्रश्न बहुत बड़ा है; अगर हम पुरानी नैतिक मान्यताओं की व्यर्थता को समझ सकें तो नयी नैतिक मान्यताएं पैदा की जा सकती हैं। न हमारे युवकों की समस्या बहुत बड़ी है। अगर हम पुराने आधारों को ही युवकों पर न थोपें। तो हमारे युवक की शक्ति मुक्त हो सकती है और देश के सृजन में लग सकती है। ... इन आने वाले दिनों में जिंदगी की जो भी जीवित समस्याएं हैं, आप मुझे लिखकर दे देंगे — जिसके जो ख्याल में जीवित समस्या है, उस पर बात करना चाहूंगा। और उसके लिए क्या नया समाधान हो सकता

है , उसकी भी बात करना चाहूंगा । मेरी बातों को मानना जरूरी नहीं है । मैं इस बात का सीधा-सीधा दुश्मन हूं कि कोई आदमी किसीको अपनी बात मनवाये । बुरा है । वही तो पुराना ढंग है । नहीं , वह नहीं चाहिए । मेरी बातें कोई भी मानने की जरूरत नहीं है । मेरी बात सुन ली , यह भी बहुत कृपा है । उस पर सोच लिया , यह भी बहुत कृपा है । अगर आप सोचने लग जायें तो मैं मानता हूं कि आप भी उन समाधानों पर पहुंच जायेंगे जिन समाधानों से देश का हल हो सकता है । " 7

## गरीबी की समस्या :

गरीबी की समस्या इस देश में हमेशा से ही रही है । कुछ लोग इस देश के सोने की चिड़िया होने की बात करते हैं , लेकिन यह बात देश के चन्द लोगों के लिए ही सही थी और उन लोगों के लिए तो यह देश आज भी सोने की चिड़िया हैxx है । यदि हम पुराने साहित्य के सन्दर्भों को देखें तो यही बात सामने आयेगी । ईश्वर के लिए "दीन-दयालु" जैसे शब्द मिलते हैं , उसके पीछे आशय क्या है ? अगर देश में गरीब नहीं थे तो इस प्रकार का चिंतन आया कहां से ? देश हमेशा से गहरी गरीबी में रहा है । "सच तो यह है कि हम इतने गरीब थे कि गरीबी के खिलाफ कभी विद्रोह भी नहीं कर सके । गरीबी के खिलाफ भी विद्रोह तब शुरू होता है जब अमीरी थोड़ी-सी फूटनी शुरू होती है । गरीब गरीबी के खिलाफ विद्रोह भी नहीं कर सकता है । बहुत गरीब कैसे विद्रोह करेगा ? अस्पताल जाने के लिए भी बिलकुल बीमार होना काफी नहीं , थोड़ा xxxxxxxx स्वास्थ्य चाहिए , ताकि अस्पताल तक जाया जा सके । " 8

यह तो एक अनुभूत सत्य है कि दलितों में भी अधिकारों के लिए वे ही लोग लड़ रहे हैं जिन्होंने थोड़ा भी अधिकारों को जाना और भोगा है , अन्यथा अधिकांश दलित तो आज भी यह मानते

हैं कि यह उनके पूर्व-जन्मों के कर्मों का फल है और उनकी यही नियति है । वस्तुतः गरीब और गरीबी को बरकरार रखने की सारी व्यवस्था बहुत ही व्यवस्थित ढंग से हमने कर ली है । दरिद्रता और गरीबी को भी "ग्लोरीफाय" किया जा रहा है । वस्तुतः गरीबी गहना हो सकती है, भूषण हो सकती है, पर किसके लिए ? सामर्थ्यवान, पूंजीपति और सम्राटों के लिए । बुद्ध और महावीर सम्राट थे, राजा थे, अमीरी को ~~भोक्ष~~ भोगकर, छककर उसका आनंद लेने के बाद वे गरीबी की ओर गये हैं । उन्होंने गरीबी का वरण किया है । गरीबी ने उनका वरण नहीं किया है । गांधीजी भी समर्थ थे । दीवान के पुत्र थे । बैरिस्टर थे । हालांकि उनको इस गरीबी में भी कोई तकलीफ नहीं हो सकती थी, क्योंकि उनकी सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखा जाता था । हमारे संत-साधु केवल कपड़ों में गरीबी दिखाते हैं, अन्यथा वे भी सब सुख-सुविधाएं भोगते हैं — गाड़ियों में घूमते हैं, बंगलों में रहते हैं, तर माल खाते हैं और कुछेक तो तर रमणियों से विहार भी करते हैं । तो गरीबी उनका श्रृंगार हो सकती है । इस संदर्भ में ओशो कहते हैं :

"बड़ी से बड़ी हमारी समस्या गरीबी की, दरिद्रता की, दीनता की है । लेकिन इस देश ने दीनता, दरिद्रता को दूर करने की बजाय ऐसी व्याख्याएं स्वीकार कर ली हैं, जिनसे दरिद्रता कभी दूर न हो सकें । दूर करना दूर, स्वीकार करने की प्रवृत्ति ने उसे स्थायी बीमारी बना दिया है । सोचा नहीं — ऐसा नहीं है, लेकिन गलत ढंग से सोचा । और कोई न सोचे तो ठीक ढंग से सोच भी ले, लेकिन एक बार गलत ढंग से सोचने की आदत बन जाय तो हजारों साल पीछा करती है । गरीब हम बहुत पुराने समय से हैं । सच तो यह है कि हम अमीर कभी भी नहीं थे । हो ही नहीं सकते थे ।" 9

हम पहले कह आये हैं कि हमारे देश में गरीबी और गरीब को बरकरार रखने की समूची व्यवस्था हो गई है । कोई वस्तु तभी तो दूर हो सकती है, जब उसको हटाने का कोई उपाय करें । परंतु हटाने के बजाय यदि हम उसे वहां बनाए रखने की ही बात चलाये रखें तो वह वस्तु कैसे हट सकती है ? ठीक वैसा ही हुआ है । इस संदर्भ में ओशो के विचार चिंतनीय हैं :

"साधु और संत और महात्मा गांव-गांव लोगों को यही समझाते फिर रहे हैं कि आदमी गरीब है अपने पिछले जन्मों के फल के कारण । गरीबी को पिछले जन्मों से जोड़ देने का मतलब यह है कि गरीबी नहीं बदली जा सकती । उसके बदलने का कोई उपाय नहीं है, उसे भोगना ही पड़ेगा । वह अपने कर्मों का फल है । अगर मैंने आग में हाथ डाला है और जल गया हूं तो भोगना ही पड़ेगा । पिछले जन्मों के कर्मों को अब बदलने का कोई उपाय नहीं है । पिछले जन्मों के कर्म वे हैं जो हो चुके हैं और उनका फल —गरीबी— मुझे भोगना पड़ रहा है । ... हमने एक व्याख्या की जिसने गरीबी पर सील मोहर लगा दी कि इसे अब कभी नहीं तोड़ा जा सकता । गरीबी भोगनी ही पड़ेगी और अगर गरीबी मिटानी हो तो इस जन्म में अच्छे कर्म करो ताकि अगले जन्म में गरीबी न रहे, अमीर हो जायें । और अच्छे कर्मों में निश्चय ही बगावत नहीं आती । अच्छे कर्मों में विद्रोह नहीं आता । अच्छे कर्मों में क्रान्ति नहीं आती । अच्छे कर्मों में आती है शांति । क्रान्ति तो बुरे कर्मों का हिस्सा है । इसलिए शांति से जियो, सन्तोष से जियो, सांत्वना रखो, अगले जन्म की xxxxx प्रतीक्षा करो । गरीबी तो निश्चित हो गई । उसको बदलने का कोई उपाय न रहा ।" [10]

यह प्रायः देखा गया है कि कोई काम करना हो तो बेचैनी भी रहती है । मन में उथल-पुथल चलती है कि क्या करें, कैसे करें ?

परंतु यदि हम उस समय यह तय करें कि यह काम आज नहीं कल या परसों करेंगे तो वह बैचेनी दूर हो जायेगी । एक समस्या थी जिसे हल करने के बजाय हमने उसे कल-परसों पर ठेल दिया । ऐसे पीछे ठेलने से समस्या हल नहीं होगी , बल्कि समस्याओं का ढेर लगता जायेगा । तो यहां तो वह समस्या सुलझ ही नहीं सकती , क्योंकि उसे कल-परसों तक भी नहीं ठेला गया है , बल्कि पिछले जन्म तक ठेल दिया गया है ।

वस्तुतः कुछ समस्याओं को लेकर , उनसे जूझने के बजाय , उनसे कतराने के लिए हमने कुछ सूत्र इजाद कर लिये हैं । उन सूत्रों को शास्त्र-कथनों का जामा पहना दिया गया है । सन्तोष — अच्छी बात है , पर क्या यह सन्तोष केवल गरीबों को ही रखना चाहिए ? अमीरों को नहीं ? वे तो बंगले पर बंगले बना रहे हैं और दूसरों को उपदेश दिया जा रहा है कि भाई तुम सन्तोष रखो । गरीबी को दूर करने के लिए गरीबी के प्रति सन्तोष नहीं , असंतोष होना चाहिए । तभी हम कुछ कर पायेंगे । संसार में जितना भी विकास हुआ है , वह असंतोष के कारण हुआ है । हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से तो कुछ नहीं होगा । आरबों ने कोन्सण्टीनोपल का रास्ता बन्द कर दिया तो योरोप की प्रजाओं ने नये समुद्री मार्गों की खोज की और खोज करते हुए अमरीका और भारत तक पहुँचे तो तो आज अपने परिश्रम के चैक को भुना रहे हैं । हमने नियम ही ऐसे बनाये कि हमारी गरीबी बनी रहे । समुद्र लांघना पाप माना गया । यदि चार-सौ पांच-सौ साल पहले हमारे पुरखे आस्ट्रेलिया ही पहुंच गये होते तो आज वह खण्ड हमारा होता और गरीबी और आबादी की इतनी भीषण समस्या न होती । एक गुजराती कवि ने लिखा है :

" जो रस्ते पड्या तो रखमाये रस्ता थई गया
बेठा रह्या जे मंजिले भूला पडी गया । "

गरीबी को नियति, भाग्य, पूर्व-जन्म के कर्म का फल, मानते हुए उसे एक दूषण या पाप समझने के स्थान पर हमने उसे गौरवान्वित किया। इसका परिणाम यह आया कि गरीब और गरीबी के प्रति हम संवेदनहीन हो गये। इस समस्या की तह तक जाते हुए ओशो कहते हैं :

"गरीबी और अमीरी सामूहिक दायित्व है -- सोशल रिस्पौंसिबिलिटी। यह ख्याल पैदा हुआ, क्योंकि हमने व्यक्ति को जिम्मेदार ठहरा दिया। इसलिए हम पांच हजार साल गरीब रहे। लेकिन ये व्याख्याएं अब भी हमारे मन में चलती हैं। अब भी हमारे मन इनसे घिरे हैं, अब भी हमारे मन इनसे मुक्त नहीं हो गये हैं। यह ध्यान रखना जरूरी है कि अगर गरीबी को तोड़ना है तो इन व्याख्याओं में हमें आग लगा देनी पड़ेगी। यह चिन्तन बदलना पड़ेगा। गरीबी हमारा सामाजिक दायित्व है। लेकिन इतने से ही गरीबी मिट न जायेगी। इतने से सिर्फ गरीबी को मिटाने की सुविधा पैदा होगी। यह हमारी पुरानी आदत कि गरीबी को या तो पिछले जन्मों पर छोड़ो, या व्यक्ति के कर्मों पर छोड़ो, या भाग्य पर या भगवान पर -- हमें और भी खतरों में ले गयी। दूसरों पर छोड़ने की आदत से हमने कहा कि अंग्रेजों ने हमें लूट लिया, इसलिए हम गरीब हैं। अंग्रेजों के लूटने की वजह से थोड़ी हमें परेशानी हुई है, लेकिन उस वजह से हम गरीब नहीं है। अंग्रेजों के लूटने से पहले भी हम गरीब थे। और अगर हमने ऐसा सोचा कि अंग्रेजों ने लूट लिया, इसलिए हम गरीब हैं तो फिर हमने गरीबी को ठहरा लिया कि अब क्या कर सकते हैं? लूट ही गये हैं, गरीब रहना ही पड़ेगा। नहीं, मूल कारण खोजने की हमारी प्रवृत्ति नहीं है। फिर एक नयी बात पैदा हुई है कि पूंजीपति शोषण कर रहा है, इसलिए हम गरीब हैं। यह बात भी बहुत खतरनाक और झूठी है। पूंजीपति शोषण नहीं कर रहा था तो भी हम गरीब थे। और अगर आज पूंजीपति के पास जितना पैसा है वह बांट दिया जाये तो देश अमीर नहीं हो जायेगा, यह भी ख्याल में रख लेना जरूरी है।" [11]

तो वस्तुतः हमारी गरीबी का कारण हमारी गलत सोच है । ढोंग, पाखण्ड , स्वार्थ , नियति , भाग्य जैसी बातों की ओट में हमने इस समस्या को हमेशा छिपा दिया । विश्वयुद्ध में समाप्त होने के पश्चात भी जापान और जर्मनी पुनः समृद्ध हो गये । पूरी तरह से लूट लिये जाने के बाद भी सिन्धी लोग पुनः समृद्धि की ओर जा रहे हैं । उद्यम और परिश्रम से सबकुछ हो सकता है । एक गुजराती पंक्ति है — " उद्यमीओ धूळमांथी सोनुं शोधी जाय छे " । ओशो ने इस विषय पर इतना कहा है कि केवल इसे लेकर एक अलग प्रबंध तैयार हो सकता है । यहां संक्षेप में केवल इतना भर कह दें कि गरीबी को हटाने के लिए हमें सभी पुराने सूत्रों पर पुनर्विचार करना होगा और आवश्यक लगें तो उन्हें खारिज भी करना होगा ।

शिक्षा की समस्या :

शिक्षा की समस्या भी हमारे देश की एक ज्वलंत एवं विकट समस्या है । शिक्षा के कारण , शिक्षित होने के कारण , समस्याएं कम होनी चाहिए , लेकिन जो हो रहा है वह उस का विपरीत है । शिक्षा और शिक्षितों के कारण ही हमारी समस्याओं में इजाफा हुआ है । हमारे देश में अशिक्षितों की बेकारी से शिक्षितों की बेकारी का प्रमाण अधिक है , क्योंकि अशिक्षित तो मेहनत-मजदूरी का काम भी कर लेते हैं , बल्कि वही काम करते हैं , परंतु शिक्षितों को तो "व्हाईट-कालर जोब " चाहिए । श्रम उनके लिए शरमजनक है । उर्दू का एक प्रसिद्ध मिसरा है — "इश्क ने गालिब निकम्मा कर दिया , वर्ना हम भी थे आदमी काम के । " यहां इश्क " के स्थान पर यदि "शिक्षा" लिख दें तो भी बात चस्पां हो जाती है ।

हमारी शिक्षा हमें श्रम से दूर ले जाती है । हमारी शिक्षा हमें गुलाम बना रही है । "सा विद्या या विमुक्तये " , परंतु यहां तो विद्या ही ऐसी मिल रही है , जो हमें अधिक से अधिक बंधनों में जकड़ें । हमारी

शिक्षा हमें मनुष्य बनना नहीं सिखाती , हमारी शिक्षा हमें प्रेम करना नहीं सिखाती , हमारी शिक्षा हमें ध्यान करना नहीं सिखाती । विश्वविद्यालय शिक्षा नहीं देते , संस्कार संस्कार देते हैं । संस्कार जो कि कारागृह बन जाते हैं । शिक्षा तो मुक्तिदायिनी होनी चाहिए । हमारे विश्वविद्यालय हमें विचार देते हैं और मुक्ति आती है निर्विचार से ।[12] शिक्षा से विनम्रता आनी चाहिए , परंतु हमारी उपाधियां , अपने दूसरे अर्थ में उपाधियां ही है , क्योंकि वे हमें बीमार बना देती हैं , हमें अहंकार की बीमारी लग जाती है ।

इस शिक्षा के संबंध में ओशो कहते हैं : " शिक्षा जिसे तुम कहते हो विश्वविद्यालय की , वहां सत्संग नहीं है । वहां बंधे हुए सिद्धान्त , धारणाएं , शब्द , शास्त्र कोरे मनों के ऊपर थोपे जा रहे हैं । विद्यार्थी आता है कोरे कागज की तरह और जब विश्वविद्यालय से लौटता है तो गुदा कागज हो जाता है । कोरे कागज का तो कुछ मूल्य भी है , गुदे कागज का तो कोई मूल्य नहीं — बस रद्दी में बेच दो । जो मिल जाय सो बहुत है । "[13]

"शिक्षा में क्रांति" नामक ग्रंथ में सुरेश नीरव अपनी भूमिका में ओशो के ही विचारों को प्रतिबिंबित करते हुए जो कहते हैं वह ध्यान देने योग्य है : " आज शिक्षा के नाम पर आदमी को जो बौना बनाया जा रहा है , इस कदहीन शताब्दी का दर्द उस अनुत्पादक शिक्षा की समग्र विफलता का बिलखता हुआ दस्तावेज है । आज की " शिक्षा पद्धति " आदमी को रट्टू तोता बनाने की घिनौनी साजिश है । उसके भीतर जो संभावनाओं का गीत पल रहा हैx होता है , उस गीत के मुलायम पंखों पर , बेरोजगार पैदा करने वाली डिग्रियों के पत्थर बांधकर उसे पंखहीन करने का लुभावना षडयंत्र है — आज की शिक्षा पद्धति । शिक्षा पीढ़ियों औरxमुल्कोंxकेx मुल्कों के कतारबद्ध

होकर मरते रहने का फरमान नहीं होती बल्कि शिक्षा एक खबरदार आदमी का वह अघोषित बयान होती है जो हमें सिखाती है कि बेअसर मुर्दा शब्दों से बेहतर होता है — अनबोला एक असरदार शब्द । वर्तमान शिक्षा पद्धति आज कुंठा का एक ऐसा अजीबोगरीब रेखागणित बन चुकी है जहां संभावनाओं के सूर्यमुखी संबोधन , टूटे हुए पंख से हताशा के कुहासे में छितरते ही जा रहे हैं । आस्था के अमलताश मुरझाने लगे हैं । ओशो रजनीश ने इस बुढ़ाती जा रही , सठियायी शिक्षा पद्धति का आदमकद मजाक उड़ाते हुए उसकी निरर्थकता को उद्घाटित किया है । और मूल्यहीनता , मूल्यसंकट , मूल्य ह्रास के इस दौर को रेखांकित करते हुए नये मूल्यों की स्थापना पर भी जोर दिया है । उन्होंने खुद एक नयी मूल्य चेतना को सर्जा है । शैक्षिक मठाधीश , राजनैतिक पंडे और रूढ़िवादी सामंत उनकी इस वैज्ञानिक सोच से भरपेट दुखी हैं — हुआ करें । उनका यह दियासलाई-सा आक्रोश सूर्य के सामने क्या हैसियत रखता है ? ... ओशो रजनीश पुराने मूल्यों को नकारते हैं । वे " अस्वीकृति में उठा हुआ हाथ " हैं । पुराने मूल्य का नकार नयी आस्था और विश्वास की शुरूआत होता है । जो सुविधावश उसमूल्य से जुड़े हैं , वे उन वयोवृद्ध मूल्यों की टूटन और संक्रांति की तकलीफ को बर्दाश्त न कर पाने के कारण उसका विरोध करते हैं । उन्हें भय भी होता है नये मूल्यों के द्वीप में पुनः नागरिकता न मिल पाने का । चिंतक नये मूल्यों की स्थापना से व्यग्र होता है । वह जर्जर प्रासादों में परिवर्तन की बारूद बिछाता है । शोषक {व्यवस्था} मूल्यों की शाश्वतता और निरंतरता की बात करता है । विचार और व्यवस्था में इसलिए टकराहट होती रही है । सुकरात , गैलेलियो, ईसा इस सत्य के गवाह हैं । इतिहास फिर अपने को दुहरा रहा है , शायद । इस पुस्तक को पढ़कर पाठक के मन में ऐसी धारणा अंकुराए यह स्वाभाविक भी है । " 14

शिक्षा पर अपने विचारों [redacted] को व्यक्त करते हुए ओशो ने कहा है : "अपने शास्त्र , अपने गुरु सब सब थोप जाना चाहते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि दुनिया में भौतिक समृद्धि तो विकसित होती जाती है लेकिन मानसिक शक्ति विकसित नहीं हो रही है । मानसिक शक्ति विकसित हो ही नहीं सकती जब तक कि हम अतीत के भार और विचार से बच्चों को मुक्त न करें । एक छोटे-से बच्चे के मस्तिष्क पर पांच-दस हजार साल के संस्कारों का भार है । उस भार के नीचे उसके प्राण दबे जाते हैं । ... तो दुनिया में भौतिक समृद्धि बढ़ती है , क्योंकि भौतिक समृद्धि को जहां हमारे मां-बाप छोड़ते हैं , उसे बच्चे आगे ले जाते हैं । लेकिन मानसिक समृद्धि नहीं बढ़ाते हैं क्योंकि मानसिक समृद्धि में हम अपने मां-बाप से आगे जाने को तैयार नहीं । आपके पिता जो मकान बना गये थे , लड़का उसको दो मंजला बनाने में संकोच अनुभव नहीं करता , बल्कि खुश होता है । और बाप भी खुश होगा कि उसके लड़के ने उसके मकान को दो मंजला किया , तीन मंजला किया । लेकिन महावीर और बुद्ध , राम और कृष्ण जो वसीयत छोड़ गये हैं उनके माननेवाले इस बात से बड़ी मुश्किल में पड़ जायेंगे कि किसी व्यक्ति ने गीता से आगे विचार किया , कि गीता के एक मंजली झोंपड़े को दो मंजला मकान बनाया है । नहीं , मन के तल पर जो मकान बाप छोड़ गये हैं उसके भीतर ही रहना जरूरी है , उससे बड़ा मकान नहीं बनाया जा सकता है । और इस बात की हजारों साल से चेष्टा चल रही है कि कोई बच्चा बाप से आगे न निकल जाये । ... जिस भांति हम भौतिक जगत में अपने मां-बाप से आगे बढ़ते हैं , जरूरी है कि बच्चे मानसिक और आध्यात्मिक विकास में भी अपने मां-बाप को पीछे छोड़ दें । इसमें मां-बाप का अपमान नहीं , बल्कि इसीमें सम्मान है । ठीक-ठीक पिता वही है , ठीक-ठीक पिता का प्रेम वही है कि वह चाहे कि उसका बच्चा हर दृष्टि से उसे पीछे छोड़ दे । लेकिन अगर किसी

भी तल पर बाप की यह इच्छा है कि बच्चा उसके आगे न निकल जाये तो यह इच्छा खतरनाक है और शिक्षक अब तक उसमें सहयोगी रहा है । अब तक सहयोग रहा है उसका । इसमें हम अपमान समझेंगे कि अगर हम कृष्ण से आगे विचार करेंगे या महावीर से आगे विचार करें या मुहम्मद से आगे विचार करें — इसमें मुहम्मद का अपमान है, महावीर का अपमान है, कितने पागलपन का खयाल है । इस कारण सारी शिक्षा अतीत की ओर उन्मुख है, जबकि शिक्षा भविष्य की ओर उन्मुख होनी चाहिए । विकासशील कोई भी सृजनात्मक प्रक्रिया भविष्य की ओर उत्सुक होती है, अतीत की ओर नहीं ।" [15]

अतीत का ज्ञान, अतीत की परंपरा, वह विरासत या पूंजी हमारे साधन बनने चाहिए, न कि साध्य । वे हमारे मार्गदर्शक बनें, न कि अवरोधक । उन्होंने एक विचार दिया, एक सूत्र दिया । हम उसे आगे बढ़ायें । उन्होंने जो कहा अपने युग-संदर्भ में, उसके बाद जब युग भौतिक दृष्टि से आगे बढ़ गया है तो निश्चित रूप से पूर्व-चिंतित बातों में भी कहं-न-कहीं बदलाव आयेगा । ज्ञान को नदी होना चाहिए, न कि चहबच्चा । ठहराव से गंदगी पैदा होगी । पानी पर काई जमने लगेगी ।

हमारी शिक्षा-पद्धति हमें प्रेम-विमुख बना देती है । इस संदर्भ में ओशो के निम्नलिखित विचार चिंतनीय रहेंगे : " शिक्षक होना बड़ी और बात है । शिक्षक होने का मतलब क्या है ? क्या हम सोचते हैं — आप बच्चों को सिखाते होंगे, सारी दुनिया में सिखाया जाता है बच्चों को, बच्चों को सिखाया जाता है कि प्रेम करो । — - लेकिन कभी आपने विचार किया है कि आपकी पूरी शिक्षा की व्यवस्था प्रेम पर नहीं, प्रतियोगिता पर आधारित है । किताब में सिखाते हैं कि प्रेम करो और आपकी पूरी व्यवस्था, आपका पूरा इंतजाम प्रतियोगिता का है । जहां प्रतियोगिता है, वहां प्रेम कैसे हो सकता है । प्रतिस्पर्द्धा तो ईर्ष्या का रूप है, जलन का

रूप है । • 16 और जहां ईर्ष्या होगी , जलन होगी , वहां प्यार कैसे हो सकता है । वस्तुतः हमारी दिक्कत यह है कि जो काम प्यार से हो सकते हैं , वहां भी स्पर्द्धा-भाव को डाल देते हैं । शिक्षा ऐसा ही एक काम है । कला का सृजन , साहित्य का सृजन , ईश्वर की भक्ति , ये सब वैसे ही काम हैं , जिनको प्रेम से करना चाहिए । अपने अहं और ईगो को पिघलाकर । विषयान्तर तो होगा , परंतु कहने का मोह रोक नहीं सकता , और वह यह कि ओशो को पढ़ना , ओशो में डूबना यह भी पयार से ही किया जाना चाहिए ।

ओशो के विचार हर मामले में कितने मौलिक और स्पष्ट होते हैं उसका एक उदाहरण यहां उपलब्ध होता है । "अभी कुछ दिन पहले शिक्षकों की एक विराट सभा में मैं बोलने गया ~~xxx~~ था , शिक्षक-दिवस था । तो मैंने उनसे कहा कि एक शिक्षक ~~xx~~ यदि राष्ट्रपति हो जाये तो इसमें शिक्षक का सम्मान क्या है ? इसमें कौन-से शिक्षक का सम्मान है ? मेरी समझ में , एक राष्ट्रपति शिक्षक हो जाये तब तो शिक्षक का सम्मान भी समझ में आता है लेकिन एक शिक्षक राष्ट्रपति हो जाये इसमें शिक्षक का सम्मान कौन-सा है । एक राष्ट्रपति शिक्षक हो जाये और कह दे कि यह व्यर्थ है और मैं शिक्षक होना चाहता हूं और शिक्षक होना आनंद की बात है । तब तो हम समझेंगे कि शिक्षक का सम्मान हो रहा है । " 17

यदि विश्व के इतिहास पर एक दृष्टि डाली जाये तो सभी महान पुरुष छोटे-छोटे स्थानों से ही ऊपर उठे हैं । ऐसे यदि कोई शिक्षक भी राष्ट्रपति हो जाता है तो उसमें शिक्षक के पद का सम्मान कैसे होगा । सम्मान तो तब माना जाये कि राष्ट्रपति बने बाद कोई पुनः उस पद पर लौट आये । और कहे कि शिक्षक होना राष्ट्रपति होने से भी ज्यादा आनंद की बात है , ज्यादा गौरव की बात है ।

शिक्षा पर बात करते हुए ओशो शिक्षक और गुरु के अंतर को xxxx स्पष्ट करते हैं : " आधुनिक शिक्षक के संबंध में कुछ कहना थोड़ा कठिन है । इसलिए कठिन है कि शिक्षक आज के पहले कभी दुनिया में था ही नहीं । शिक्षक का धंधा , वह बहुत आधुनिक घटना है । पहले गुरु थे , वे शिक्षक से बहुत भिन्न थे । शिक्षण उनका धंधा नहीं था , उनका आनंद था । शिक्षण पहली दफे धंधा बना है । और जिस दिन शिक्षण धंधा बन जायेगा , उस दिन शिक्षक गुरु होने की हैसियत खो देता है । उस दिन वह गुरु नहीं रह जाता , नौकर हो जाता है या व्यवसायी हो जाता है । .... उसे [शिक्षक को] आदर की आकांक्षा भी छोड़ देनी चाहिए और फिर गुरु होने की हिम्मत जुटानी चाहिए । ऐसा तो नहीं है कि गुरु को आदर देना पड़े । बात उल्टी है । जिसे हमें आदर देना ही पड़ता है उसको ही गुरु कहते हैं । जिसे आदर दिये बिना कोई रास्ता ही नहीं है , जो हमारे आदर को खींच लेता है , उसे ही हम गुरु कहते हैं । लेकिन शिक्षक और बात है । शिक्षक कुछ काम ही दूसरा कर रहा है । ... क्या काम कर रहा है शिक्षक ? वह जो मास प्रोडक्शन है , वह जो बड़े पैमाने पर आदमियों को ढालने की कोशिश चल रही है , वह जो बड़े-बड़े कारखाने हैं , प्रायमरी स्कूल से युनिवर्सिटी तक , उन सब कारखानों में आदमी के ढालने का प्रयास चल रहा है । शिक्षक उसमें नौकर है , और वह जो काम वहां कर रहा है , वह काम किसी भी व्यक्ति की आत्मा को नहीं जगा पाता । .... गुरु वह है जो किसी की आत्मा को जगा दे , किसीके व्यक्तित्व को गरिमा दे दे , उसके बंद फूल खिल जायें । शिक्षक वह है जो पुरानी पीढ़ियों के द्वारा अर्जित सूचनाओं को , नयी पीढ़ी तक पहुंचाने का वाहक का काम कर दे और विदा हो जाये । शिक्षक सिर्फ पुरानी पीढ़ियों ने जो ज्ञान अर्जित किया है , उसे नयी पीढ़ी तक जोड़ने का काम करता है , उससे ज्यादा नहीं । वह केवल मध्यस्थ है । " 18

अब स्थितियां बदल गयी हैं। शिक्षक को अब विनम्र होना पड़ेगा। कल तक शिक्षक केन्द्र में था और विद्यार्थी परिधि पर, पर अब उल्टा हो गया है, विद्यार्थी को अब केन्द्र में लाना पड़ेगा। भविष्य में शिक्षक को आदर का विचार छोड़कर प्रेम के ख्याल पर आना पड़ेगा। "और मेरा मानना है, प्रेम आदर से ज्यादा मूल्यवान है। क्योंकि प्रेम में आदर तो समाविष्ट है, लेकिन आदर में जरूरी रूप से प्रेम समाविष्ट नहीं होता। प्रेम बड़ी वेल्यू है, आदर उतनी बड़ी नहीं। हम जिसे आदर करना पड़ता हो, उसे हम घृणा ही करते हैं। लेकिन जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे हम किसी गहरे अर्थों में आदर भी करने लगते हैं। प्रेम में तो आदर समाविष्ट हो सकता है, लेकिन आदर में जरूरी नहीं है कि प्रेम समाविष्ट हो। लेकिन आदर जब मांगा जाता है, तो अपमानजनक हो जाता है। और आदर जब थोपा जाता है, तो भीतर निषेध और बगावत पैदा करता है। आज्ञा जब ऊपर से डाली जाती है तो अपने को तोड़ जाने का निमंत्रण देती है।" 19

इन परिवर्तित स्थितियों में शिक्षक की भूमिका के संबंध में ओशो कहते हैं: "नये शिक्षक का काम अब ज्यादा से ज्यादा बड़े भाई का होगा, पिता का नहीं। नया शिक्षक ठीक अर्थों में मित्र होगा, गुरु नहीं। उसको मित्रता की कोई धारणा विकसित करनी होगी। उसे आज्ञा देने वाले की शक्ल छोड़ देनी पड़ेगी। अगर आज्ञा न देगा, कड़ाई नहीं करेगा, ज्यादा से ज्यादा परसुएड करेगा, समझायेगा, बुझायेगा, राजी करेगा। राजी हो जाये तो ठीक है; न राजी हो तो नाराज नहीं हो जायेगा। इसलिए आज के शिक्षक के सामने जो बड़े से बड़ा सवाल है वह यह है कि उसे पुरानी जो सारी की सारी परिकल्पनाएं हैं शिक्षक के आसपास वह छोड़नी और नयी परिकल्पनायें विकसित करनी हैं, जो अब तक नहीं थी। उसे विनम्र होना पड़ेगा। जैसे मैंने कहा, बहुत बुनियादी आधार — हम सदा सिखाये हैं अब तक कि बच्चों को,

विद्यार्थियों को विनम्र होना चाहिए , क्योंकि हम कहते थे कि जो विनम्र है वही सीख सकता है । ..... [पर] अब सूत्र बदलना पड़ेगा । अब तो जो विनम्र है , वही सिखा सकता है । असल में विनम्र हुए बिना कोई सिखा नहीं सकता । और मेरा मानना है , जिस दिन सिखाने वाला विनम्र होगा उसी दिन सीखनेवाला भी विनम्र हो सकता है । क्योंकि सिखाने वाला ही विनम्र न हो , तो सीखने-वाला विनम्र कैसे हो सकता है ? सिखानेवाला अब तक बहुत अविनम्र था । अगर हम पुराने शिक्षक की कल्पना करें , तो वह बहुत इगो-सैंट्रिक है , वह बहुत अहंकार से भरा हुआ है । उसके अहंकार के आसपास उसने पैर छूने से लेकर सब तरफ से नयी पीढ़ी को झुकाने का काम किया था । " [20]

शिक्षा में मौलिक विचारों पर जोर देते हुए ओशो कहते हैं : पुरानी सारी की सारी शिक्षा अंध-विश्वास पर और अंधश्रद्धा पर निर्भर है । विचार करने की प्रेरणा नहीं दी जाती थी , विचार को रोकने की चेष्टा की जाती थी । और ध्यान रहे , विचार बहुत विद्रोही हैं , विचार सदा विद्रोही रहे हैं । विचार का मतलब ही विद्रोह है , क्योंकि विचार हमेशा इनकार करने से शुरू होता है । जो इनकार नहीं कर सकता है , वह विचार ही नहीं कर सकता है । अगर मैं हां कहता हूं तो विचार करने का आगे कोई उपाय ही नहीं रह जाता है । हां , डेड एण्ड है । जब मैं कहता हूं "हां " , तो अब आगे कोई उपाय नहीं है । जब मैं कहता हूं "नहीं" , तो अब आगे सब उपाय है । "नहीं" जो है , वह द्वार है , क्योंकि जब मैं कहता हूं नहीं , तो तर्क करना पड़ेगा , सोचना पड़ेगा , दलील देनी पड़ेगी । और जब मैं कहता हूं "हां" , तो न सोचना पड़ेगा , न तर्क देना पड़ेगा , न दलील करनी पड़ेगी । पुरानी सारी व्यवस्था सिखाती थी हां कहना , वह येस पैदा करती थी जो हां कहे । उससे एक फायदा था कि समाज की जो

व्यवस्था थी वह इन "हां" कहनेवालों की वजह से कभी बदलती नहीं थी । लेकिन बड़ा नुकसान था कि समाज विकसित नहीं होता था । इस दुनिया में जितना विकास हुआ है , वह "न" कहने वालों की वजह से हुआ है । जिन्होंने किसी गहरे तल पर इनकार किया है , वे विकास के कारण बने हैं । चाहे वह कोई दिशा रही हो -- चाहे वह गणित हो , चाहे वह दर्शन हो , चाहे वह धर्म हो , चाहे विज्ञान हो -- जिन्होंने इनकार किया है , वे विकास के आधार बने हैं । " 21

शिक्षक की स्थिति बदल गई है । उसकी भूमिका बदल गई है । उसका काम बदल गया है । इस बदले हुए माहौल में शिक्षक के नये उत्तर-दायित्व की ओर इशारा करते हुए ओशो कहते हैं : " शिक्षक के सामने एक नया काम आ गया है कि वह अज्ञात का बोध दे । वह न केवल इतना बताये कि हम क्या जानते हैं , वह यह भी बताये कि हम जो भी जानते हैं वह कल व्यर्थ हो जायेगा , और नये जानने के द्वार खुल जायेंगे । इसलिए पुराना शिक्षक एक सरटेंटी में था , एक निश्चय में था । नया शिक्षक एक अनिश्चय में है । वह निश्चित नहीं हो सकता । और अगर निश्चित होता है , तो मनुष्य को गति नहीं दे सकता । पुराना शिक्षक कहता था , जो मैं कहता हूं , वह ठीक है , और तुम्हारा काम है कि मान लो । नये शिक्षक को बहुत रिलेटिविस्ट होना पड़ेगा , उसे सापेक्षवादी होना पड़ेगा । उसे कहना पड़ेगा कि शायद जो मैं कहता हूं वह ठीक है । अब तक ठीक है , कल गलत भी हो सकता है । पुराना शिक्षक कहता था , जो मैं कह रहा हूं , ठीक है । तुमने जो समझ लिया , उसको ठीक सिद्ध करना । नये शिक्षक को कहना पड़ेगा , जो मैं कह रहा हूं , वह ठीक है । भगवान से प्रार्थना है कि तुम उसे अगर गलत सिद्ध कर सको तो हित होगा मनुष्य का , आगे गति होगी । " 22

इसलिए अब शिक्षकों का उत्तरदायित्व बढ़ गया है । उसका काम बढ़ गया है । पहले जो ज्ञान सैंकड़ों वर्षों में थोड़ा बढ़ता था, वह अब कुछ दशकों में बढ़ जाता है । उसे "अप-टू-डेट" होना पड़ेगा, अन्यथा वह शीघ्र ही तिथिबाह्य [आउट-डेटेड] हो जायेगा । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि ओशो ने शिक्षा विषयक चिंतन की दिशा को ही बदल दिया है और सोचने के नये आयाम प्रस्तुत किये हैं ।

नारी-चेतना और ओशो :

मानवता के इतिहास में नारी जाति के साथ बहुत ही अत्याचार हुआ है । यह अत्याचार धर्म, शास्त्र, समाज तथा उसके रीति-रिवाज के नाम पर चल रहे हैं । हमारी सभ्यता और संस्कृति नारी के योगदान के बिना अधूरी है । हजारों वर्षों तक स्त्री को पुरुष से हीन और छोटा समझा जाता रहा । चीन में हजारों वर्षों तक यह माना जाता रहा कि स्त्री एक जड़ वस्तु है और उसमें आत्मा जैसी कोई बात नहीं होती । इसलिए वहां पत्नी की हत्या कर देने पर पुरुष को दंडित नहीं किया जाता था, क्योंकि उनकी समझ यह थी कि वह पुरुष की संपत्ति है, उसे चाहे जीवित रखे, चाहे मार डाले ।[23]

भारत में भी स्त्रियों की स्थिति कोई खास सम्मानजनक नहीं कही जा सकती । यहां भी पुरुषों ने उसे अपनी संपत्ति का ही एक हिस्सा माना । शास्त्र, सभ्यता और शिक्षा का निर्माण पुरुषों के द्वारा हुआ अतः उनके केन्द्र में भी वही रहा । इसका एक बड़ा घातक परिणाम यह आया कि सभ्यता के विकास में स्त्री का कोई योगदान न रहा । और अकेले पुरुषों द्वारा जो सभ्यता विकसित होगी, वह सिवाय युद्ध और हिंसा के कहीं नहीं जायेगी ।[24] नीत्से ने बुद्ध और क्राइस्ट को जो स्त्रैण कहा है वह इन्हीं अर्थों में कि वे प्रेम और करुणा की अधिक बातें करते

हैं । जिस दिन हमारी सभ्यता में नारी के योगदान को स्वीकृति मिलेगी , उस दिन वह प्रेम , माधुर्य और सौन्दर्य से भर जायेगी । अब तक केवल पुरुषों के गुणों को सम्मान मिलता रहा , स्त्रियों के गुणों की हमेशा उपेक्षा होती रही । " यह जानकर आपको हैरानी होगी अगर कोई स्त्री पुरुषों के गुणों में आगे हो जाये तो उसे जान आफ आर्क या रानी लक्ष्मीबाई ... लेकिन क्या कभी आपने यह सुना कि कोई पुरुष स्त्रियों के गुणों में विकसित हो जाये तो उसका कभी कोई सम्मान हुआ था ? अगर कोई पुरुष स्त्रियों जैसा प्रतीत हो तो उसका अपमान होगा और कोई स्त्री पुरुष जैसी प्रतीत हो तो उसका सम्मान होगा और चौरस्तों के ऊपर उसकी मूर्तियां खड़ी की जायेंगी । " 25

पुरुषों ने अपने गुणों को अनिवार्य रूप से स्वीकार कर लिया है , इतना ही नहीं स्त्रियों ने भी भी उस पर स्वीकृति की मुहर लगा दी है । स्त्रियों ने कभी सोचा ही नहीं कि उनके व्यक्तित्व की भी कोई गरिमा , कोई प्रतिष्ठा हो सकती है । उनका भी अपना एक अलग व्यक्तित्व हो सकता है । हजारों वर्षों से स्त्रियों के साथ जो अन्याय हुआ उसके कारण पश्चिम की स्त्रियों ने बगावत की है और उसका एक बहुत ही विद्रूप स्वरूप हमारे सामने आ रहा है । एक गलती पुरुषों ने की थी , अब दूसरी गलती स्त्रियां कर रही हैं । उसके कारण स्त्री और पुरुष में मैत्री-संबंध , प्रेम-संबंध के स्थान पर सांप-नेवले वाला संबंध बनने जा रहा है , जो मानवता के विकास में अत्यन्त खतरनाक है । इस संबंध में ओशो कहते हैं :

"मैं कहना चाहता हूं कि स्त्रियां न तो पुरुषों से हीन हैं और न समान हैं । स्त्रियां पुरुषों से भिन्न हैं , वे बिलकुल भिन्न हैं । न उनके नीचे होने का सवाल है , न उनके समान होने का सवाल है , स्त्रियां पुरुषों से बिलकुल भिन्न हैं और जब तक स्त्रियां अपनी भिन्नता की भाषा में , अपने अलग व्यक्तित्व की भाषा में सोचना शुरू नहीं

करेंगी तब तक या तो वे पुरुष की दास होंगी या पुरुष की अनुयायी होंगी , और दोनों स्थितियां खतरनाक हैं । " 26

स्त्रियों को मनुष्य समझना चाहिए । उनका उचित सम्मान होना चाहिए । उनको अधिकार और न्याय मिलना चाहिए । परंतु यह भी समझ लेना चाहिए कि दोनों प्रकृतिगत अलग-अलग इकाई हैं । स्त्री में यदि हम पुरुष-सहज गुणों के विकास का प्रयत्न करेंगे तो वह प्रकृति के खिलाफ जाना होगा । स्त्री की अपनी प्रकृति है । पुरुष की अपनी प्रकृति है । गलती कहां हुई कि जहां दोनों की प्रकृति को समान महत्व मिलना चाहिए , किसी एक को दूसरे से हीन नहीं समझना चाहिए , वहां ऐसा हुआ । अब इस गलती को हमें सुधार लेना चाहिए और दोनों को अपनी-अपनी प्रकृति के अनुरूप अपने गुणों के विकास की स्वतंत्रता उपलब्ध करानी चाहिए । स्त्री पुरुष की स्पर्द्धा करने जायेगी , तो न तो वह पूर्णतया पुरुष ही बन पायेगी , न स्त्री ही रह जायेगी । इस संदर्भ में ओशो के विचार चिंतनीय रहेंगे :—

"और बड़े आश्चर्य की बात है , इस सदी में जब कि मनुष्य के शरीर और फिजियोलोजी के संबंध में बहुत कुछ जानते हैं , हमें इतना भी पता नहीं है कि वही क्वायद , वही एक्सरसाइज पुरुष और स्त्री को नहीं करवायी जा सकती है । स्त्री के शरीर के नियम , स्त्री के शरीर की बनावट बहुत भिन्न है । उसे अगर वही क्वायद करवायी जाती है और उसे भी एन.सी.सी. में वही लेफ्ट-राइट करवाया जाता है जो पुरुष सैनिक सीख रहे हैं तो हम स्त्री के भीतर किसी बुनियादी तत्व को तोड़ देंगे जिसका हमें कोई पता ही नहीं , जिसका हमें खयाल ही नहीं है । अतीत के लोग नासमझ नहीं थे । पुरुषों के लिए उन्होंने व्यायाम खोजे , स्त्रियों के लिए नृत्य खोजा । कोई अर्थ था , कोई कारण था । नृत्य में एक रिदम है , नृत्य में एक लययुक्तता है जो स्त्रियों के शरीर के हार्मोन्स को , उसके

शरीर के रासायनिक तत्वों को एक और तरह की गतिमयता और संगीत से भरते हैं । क्वायद बात दूसरी है । क्वायद के अर्थ और प्रयोजन भिन्न हैं । क्वायद मनुष्य के भीतर जो क्रोध है उसे सजग करती है , मनुष्य के भीतर जो लड़ने की [illegible] प्रवृत्ति है उसे तीव्र करती है । मनुष्य के भीतर जो दूसरे के साथ हिंसा होने का भाव है उसे मजबूत करती है , बलवान करती है । क्वायद अगर स्त्रियों को सिखायी गयी तो घर नष्ट हो जाने वाले हैं , इसका हमें कोई खयाल ही नहीं । " 27

सी. एम जोड पश्चिम के एक विचारक हैं । उनको उद्धृत करते हुए ओशो कहते हैं : " उसने लिखा कि जब मैं पैदा हुआ था तो मेरे देश में घर थे , होम्स थे , लेकिन अब जब मैं बूढ़ा होकर मर रहा हूं तो मेरे देश में होम जैसी कोई चीज नहीं है , घर जैसी कोई चीज नहीं है , केवल मकान , केवल हाउसेस रह गये हैं । होम और हाउस में कुछ फर्क है ? घर और मकान में कोई भेद है ? होटल में और घर में कोई फर्क है ? अगर कोई भी फर्क है तो वह सारा फर्क स्त्री के ऊपर निर्भर है और किसी पर निर्भर नहीं है । " 28

एक स्थान पर ओशो एक बूढ़ी स्त्री का उदाहरण देते हैं । उसको उसके बेटे ने खूब पीटा था और वह लहूलुहान हो गयी थी । कुछ स्त्रियां उसे अस्पताल में भर्ती कराने ले जा रही थीं । उनमें से एक स्त्री कहती है : ऐसे बेटे न हों तो ही अच्छा है । बुढ़िया उसके मुंह पर हाथ रख देती है और कहती है कि बेटा था तो उसने मारा न , बेटा न होता तो कौन मारता ? लड़का ही तो है , अभी समझ ही कितनी है । यह एक मां का हृदय है जो गणित में नहीं सोचता , जो कानून में नहीं सोचता । जो किसी प्रेम और आशा से सोचता है । 29 इसी संदर्भ में आगे विचार-सूत्र को बढ़ाते हुए ओशो कहते हैं : "स्त्रियों की शिक्षा एकदम भिन्न होनी चाहिए [illegible] ताकि

उनकी दृष्टि भिन्न हो । वे जीवन को किन्हीं और ढंगों से सोचने मे समर्थ हो सकें । लेकिन नहीं , यह नहीं हो रहा है । हम उन्हें उन्हीं दृष्टियों में , उन्हीं दर्शनों में , उन्हीं विचारों में दीक्षित कर रहे हैं जिनमें पुरुष दीक्षित हैं और पुरुष ने जो दुनिया बनायी है वह गलत सिद्ध हो चुकी है । इसे कुछ कहने की जरूरत नहीं है । पिछले तीन हजार वर्षों में पुरुषों की दुनिया में पन्द्रह हजार युद्ध हुए हैं । शायद ही कोई दिन ऐसा हो जब जमीन पर युद्ध नहीं हो रहे हों । प्रति दिन युद्ध हो रहे हैं । यह अकेले पुरुषों की बनायी हुई दुनिया है , यह हार चुकी है , असफल हो चुकी है , यह प्रयोग हो चुका है । क्या हम एक प्रयोग नहीं करेंगे कि स्त्रियां भी इस दुनिया के बनने में कोई महत्वपूर्ण हिस्सा बटाएं ? एक नयी दुनिया को बनाने के लिए कोई आधार रखें या कि वे भी पुरुष की नकल करेंगी और आज नहीं कल सैनिकों के वस्त्र पहनकर नगरों पर एटम बम गिरायेंगी ? " 30

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्त्री के विषय में ओशो की सोच अन्य लोगों से भिन्न प्रकार की है । वे कहते हैं : " मैं सोचता हूं , एक महान शक्ति सोयी हुई पड़ी है । दुनिया की आधी से बड़ी ताकत उनके पास है । आधी तो इसलिए कहता हूं कि स्त्रियां आधी तो हैं ही दुनिया में , आधी से बड़ी इसलिए कि बच्चे-बच्चियां उनकी छाया में पलते हैं और वे जैसा चाहें उन बच्चे और बच्चियों को परिवर्तित कर सकती हैं । पुरुषों के हाथ में कितनी ही ताकत हो , लेकिन पुरुष एक दिन स्त्री की गोद में होता है , वहीं से वह अपनी यात्रा शुरू करता है और चाहे वह कितना ही बड़ा हो जाये और चाहे वह वृद्ध ही क्यों न हो जाये , वह अपनी पत्नी के सानिध्य में , अपनी पत्नी की निकटता में निरंतर अपनी मां का अनुभव करता ही है , निरंतर अपनी मां की छाया देखता

ही है । मां की छाया में बड़ा होता है । मां बचपन से उसके जीवन में छाया बनी रहती है । .... एक बार स्त्री की पूरी शक्ति जाग्रत हो जाये और वे निर्णय कर लें वे किसी प्रेम की दुनिया को निर्मित करेंगी जहां युद्ध नहीं होंगे , जहां हिंसा नहीं होगी , जहां राजनीति नहीं होगी , जहां पोलीटिशियंस नहीं होंगे , जहां जीवन में कोई बीमारियां नहीं होंगी । अगर एक ऐसी दुनिया तय कर लें स्त्रियां , बनानी तो बहुत कठिन नहीं है कि वे एक नयी दुनिया बनाकर खड़ी कर दें और वह दुनिया पुरुषों की बनायी दुनिया से बेहतर होगी । आज भी जगत में जिन लोगों ने कुछ महत्त्वपूर्ण योग दिया है उन सारे लोगों में स्त्रियों के गुण अद्भुत थे । गांधी के ऊपर तो एक स्त्री ने किताब भी लिखी है --" बापू माय मदर अर्थात् गांधी मेरी मां -- गांधी के पास बहुत लोगों को लगा कि उनके मन में मां जैसे बहुत कुछ गुण हैं । बुद्ध के पास जाकर लोगों को लगता था , क्राइस्ट के पास जाकर लोगों को लगता था कि शायद इन आदमियों के भीतर , इन पुरुषों के भीतर भी स्त्रियों की अद्भुत क्षमता है । .... जहां भी प्रेम है , जहां भी करुणा है , जहां भी दया है वहां स्त्री मौजूद है । इसलिए मैं कहता हूं कि स्त्री के पास आधी से ज्यादा बड़ी ताकत है और वह पांच हजार वर्षों से बिलकुल सोयी हुई पड़ी है , बिलकुल सुप्त पड़ी है । नारी की शक्ति का कोई उपयोग नहीं हो सका है । भविष्य में यह उपयोग हो सकता है । उपयोग होने का एक सूत्र यही है कि स्त्री यह तय कर ले कि उन्हें पुरुषों जैसा नहीं हो जाना है । " 31

दलित-चेतना और ओशो :

हमारे यहां धर्म और शास्त्र और समाज के नाम पर शोषण दो का हुआ -- नारी और दलित जातियों का । ओशो ने अनेक स्थानों पर अस्पृश्य जातियों के साथ जो अन्याय हुआ है , उनके साथ जो अत्याचार हुए हैं , उसकी चर्चा की है , परन्तु न्यस्त हित वाले

लोगों ने ओशो को "सेक्स-गुरु" तथा "अमीरों का गुरु" जैसे लेबल लगाकर कुछ लोगों से दूर रखने का प्रयत्न किया है जबकि यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि दलितों के मसीहा डा. बाबा साहब आंबेडकर के विचारों में और ओशो के विचारों में अधिकांश विषयों में गजब की समानता पायी जाती है और मनु, राम, कृष्ण, परशुराम, इन्द्र, शंकराचार्य, महात्मा गांधी और विनोबा तक के महानुभावों के विचारों और नीतियों की उन्होंने सख्त भर्त्सना की है ; वहां डा. बाबासाहब आंबेडकर का नाम उन्होंने सदैव इज्जत से लिया है और गांधी की तुलना में हमेशा बाबासाहब को सही करार दिया है। डा. सन्देश भालेकर ने इस तथ्य को रेखांकित करते हुए "डा आंबेडकर और ओशो" नामक एक पुस्तक भी लिखी है।

उस पुस्तक में डा. भालेकर लिखते हैं : " ओशो ने भारतीय समाज की व्यवस्था की जड़ों पर और उसके आधार स्तंभों इस प्रकार के मर्मान्तक प्रहार किये हैं जो संभवतः इस सदी में शायद ही किसी और मनीषी ने किये हों। वे महाभारत के युद्ध को आदर्श युद्ध नहीं मानते। वे कृष्ण को धार्मिक पुरुष होने की मान्यता नहीं देते क्योंकि उसने अर्जुन को युद्ध के लिए उकसाया। उल्टे वे अर्जुन के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं जो नाहक कृष्ण की चपेट में फंस गया। "

"ओशो सदैव शम्बूक के पक्षधर रहे हैं, राम के नहीं। उन्होंने हमेशा एकलव्य का पक्ष लिया है, द्रोणाचार्य का नहीं। आज के युग में वे गांधी की बार-बार भर्त्सना करते हैं, और उसी सांस में डा. बाबासाहब आंबेडकर के साथ हो लेते हैं। मनुस्मृति से लेकर वेद, रामायण, महाभारत आदि धर्मग्रन्थों को और उनकी मान्यताओं को उन्होंने अस्वीकार कर दिया। "

"आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि ओशो जब-जब भी भारत

की सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं पर बोले हैं तब-तब वे अछूतों शूद्रों एवं शोषितों का खुलकर पक्ष लेते हैं । और धर्म पर जब चर्चा करते हैं सीधे बुद्ध और बुद्धत्व की चेतना की ही बात करते हैं । और मेरी नजर में यही एकमात्र कारण है कि उनकी संगति इतिहास के किसी भी महा-पुरुष की तुलना में डा. बाबासाहब आंबेडकर के साथ अत्यधिक सटीक बैठती है । कुल मिलाकर ओशो का कार्य अछूत-शोषित और उत्पीडित मनुष्यता की मुक्ति का पक्षधर है और ब्राह्मण एवं ब्राह्मणवाद का उतना ही कड़ा विरोधक भी । उनके इस स्पष्टवादी व्यक्तित्व के कारण ही इस मुल्क के प्रस्थापित धर्म ने उनका इन्कार कर दिया ।"

"और क्योंकि ओशो अछूतों की राजनीति में बराबरी की सत्ता चाहते हैं, आरक्षण दो सौ सालों तक कायम रखने की बात कहते हैं, कदम-कदम पर वे अछूतों-शोषितों का पक्ष लेते हैं, यहां के प्रस्थापितों के मीडिया ने ओशो की आवाज को उन लोगों तक कभी भी पहुंचने नहीं दिया । " [32]

डा. बाबासाहब अम्बेडकर और ओशो में सामान्य चिंतन के कई बिन्दु उपलब्ध होते हैं । भारत की प्रायः तमाम समस्याओं तथा उनके समाधान को लेकर ओशो की तीन पुस्तकें उपलब्ध हैं : "स्वर्ण-पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का ", "देख कबिरा रोया " तथा "शिक्षा में क्रांति"। इन पुस्तकों में भारत की तमाम समस्याओं को लेकर ओशो ने जो चिन्तन प्रस्तुत किया है, वह डा. बाबासाहब की कुल विचारधारा के साथ अद्भुत ढंग से मेल खाता है कि अंग्रेजी की वह कहावत — " द ग्रेट माइण्ड्स वर्क टुगेधर " — चरितार्थ होते हुए प्रतीत होती है ।

"ओशो की इन तीन किताबों का डा. बाबासाहब की विचार-धारा के संबंधों के अलावा दूसरा एक मौलिक पहलू है । इन पुस्तकों

में जहां-जहां भी ओशो बाबासाहब पर बोले हैं, तब-तब अत्यन्त पुरजोर ढंग से उन्होंने उनका पक्ष लिया है और उनके कार्यों की सराहना की है।" [33]

भारतीय दलित-जीवन और बाबासाहब आंबेडकर के संदर्भ में पूना-क्षक्ष× पेक्ट की घटना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसके सन्दर्भ में ओशो ने गांधी को गलत और हिंसक घोषित किया है, जबकि डाक्टर साहब को सही और अहिंसक करार दिया है। इस विषय में ओशो की यह टिप्पणी देखिए : "वे पूरी तरह सही थे और गांधी एकदम गलत। परंतु क्या करते? क्या वे खतरा उठा लेते? उन्हें (डा. अम्बेडकर को) स्वयं अपने प्राणों की कोई चिन्ता नहीं थी, यदि उन्हें जीवित मार भी दियाxक्षक्षxxxxx गया होता। लेकिन वे उन करोड़ों लोगों के प्रति चिंतित थे जिन्हें यह कुछ पता भी नहीं था कि आखिर यह सब क्या चल रहा है। उनके मकान जला दिये गये होते, उनकी स्त्रियों पर बलात्कार होते, उनके नन्हे-मुन्ने बच्चों को कत्ल कर दिया गया होता और यह सब इतना अकल्पित हुआ होता, जैसा कि कभी हुआ ही नहीं था।" [34] गांधी यदि उपोषण से मर जाते तो उसके जो भयंकर परिणाम दलितों को भुगतने पड़ते, उसका विचार करके डाक्टर साहब को अपने कोटि-कोटि दलितों के सपनों का गला घोंटते हुए वह पेक्ट करना पड़ा था। उसके सन्दर्भ में ओशो ने लिखा है : "बट धीस आरेन्ज ज्यूस, धीस वन ग्लास आफ आरेन्ज ज्यूस, कन्टेइन्स मिलियन्स आफ पिपल्स ब्लड।" लेकिन इस संतरे के एक गिलास में, एक प्याली में इस देश के करोड़ों-करोड़ों अछूतों का खून समाया हुआ है। [35]

सन् 1988 में अछूतों के मंदिर प्रवेश को लेकर पुनः एक बार देश में बावेला मचा था। शंकराचार्य उन्हें मंदिर-प्रवेश से रोक रहे थे। आर्य-समाजी नेता एवं सांसद स्वामी अग्निवेश उन्हें मंदिर-प्रवेश दिलाना चाहते थे। ओशो इन दोनों की राजनीति जानते थे,

अतः एक विज्ञप्ति के द्वारा अछूतों को हिन्दू धर्म का ही त्याग करने का आह्वान देते हैं । यहां भी ओशो और अम्बेडकर के विचारों में गजब का साम्य दृष्टिगोचर होता है । ओशो कहते हैं : "यह विरोधाभासी लगता है , पर है नहीं । दोनों {शंकराचार्य और अग्निवेश} राजनीति खेल रहे हैं । पुरी के शंकराचार्य हरिजनों को हिन्दू मंदिरों में प्रवेश से रोकना चाहते हैं और स्वामी अग्निवेश उन्हें प्रवेश दिलाना चाहते हैं । ऐसा इसलिए नहीं कि वह हिन्दू शास्त्रों और पूरी हिन्दू परंपरा के खिलाफ है ; बल्कि सिर्फ इसलिए कि हरिजनों के पच्चीस करोड़ व्होट हैं । " [36] वस्तुतः यह उनकी मिलीभगत थी ।

तब अछूतों की आत्मा को जगाते हुए ओशो कहते हैं : " युगों-युगों से हजारों हरिजनों को जिन्दा जलाया जा रहा है और यह आज भी हो रहा है । उनके गांव के गांव जलाये जाते हैं । उनके पशु , उनके बच्चे , उनके वृद्धजन — हर किसीको जला दिया जाता है , सिर्फ जवान स्त्रियों को छोड़कर — जिनके साथ बलात्कार होता है । फिर भी वे उन्हीं लोगों के मंदिरों में जाना चाहते हैं । उन्हें स्मरण दिलाना होगा : तुम भी मनुष्य हो । .... ये गरीब लोग सदियों से दमित किये जाते रहे हैं और इन्हें किसी शिक्षा की अनुमति नहीं दी गयी है । लेकिन कम से कम इतनी समझ के लिए किसी शिक्षा की बिलकुल जरूरत नहीं है , कि यदि कोई धर्म तुम्हें अपने मंदिरों में प्रवेश करने देना नहीं चाहता , तो ऐसे किसी धर्म का अंग क्यों होना ? " [37] इसी संदर्भ में वे आगे कहते हैं : " तुम्हारे सभी धर्म तुम्हारे कारागृह है , वे तुम्हारी जंजीरें हैं , यदि तुम वास्तव में अस्तित्व और उसके नृत्य का स्वाद लेना चाहते हो , तो तुम्हें छोड़ देना होगा ; संसार नहीं , बल्कि धर्म और उनके शास्त्र ।" [38]

अंग्रेजी में एक कहावत है :"मैन इज़ नोन बाय द कंपनी ही कीप्स "। अर्थात् मनुष्य की पहचान उसकी मित्र-मंडली भी होती है । ओशो

की चिंतन-यात्रा में जो व्यक्ति आते हैं, उनमें किनकी वे भर्त्सना करते हैं, किनका वे पक्ष लेते हैं, किनकी चर्चा करते हुए वे भाव-विभोर हो जाते हैं; इन सब बातों से भी ओशो की दलित-चेतना स्पष्ट होती है। समकालीनों तथा निकट अतीत के व्यक्तित्वों में वे डाक्टर साहब, कोल्हापुर के महाराजा शाहू महाराज, महात्मा ज्योतिबा फुले आदि को अधिक पसंद करते हैं और डाक्टर साहब की बात करते हुए तो बाग-बाग हो जाते हैं। प्राचीनों में बुद्ध, महावीर, अशोक, कबीर, सेन, रैदास, मलूकदास, पलटूदास, सहजोबाई, दयाबाई, रज्जब, वाजिद आदि की बातों में उनका मन रमता है। मेरे निर्देशक डा. पारूकांत देसाई की एक गुजराती काव्य-पंक्ति है — "तारीना घडियामां तेर नो आवे" — अर्थात् तिया के पहाड़े में तेरह नहीं आ सकते। ओशो में लाख अन्तर्विरोध मिलेंगे। परंतु कुछ लोगों के संबंध में उनकी चिंतना का पिण्ड जो बन गया है, उसमेंकोई परिवर्तन नहीं दृष्टिगोचर होता। सम्पूर्ण ओशो-साहित्य में हमें दलितों-शोषितों-स्त्रियों के प्रति एक प्रकार की पक्षधरता उपलब्ध होती है।

## परिवार-नियोजन पर ओशो के विचार :

परिवार-नियोजन पर ओशो के जो विचार हैं वे एक दृष्टिसंपन्न व्यक्ति के विचार हैं। बढ़ती हुई आबादी को ओशो भारत की सबसे बड़ी समस्या मानते हैं। भारत के सामने बड़े से बड़ा सवाल जनसंख्या का है। हिन्दुस्तान की आबादी इतने जोर से बढ़ रही है कि हम कितनी भी प्रगति करें, कितना ही विकास करें, कितनी ही संपत्ति पैदा करें, उसका कुछ परिणाम न होगा। क्योंकि हम जितनी संपत्ति पैदा करेंगे, उससे चार गुना तो उसे खाने वाले पैदा हो जायेंगे, अतः रहेंगे हम कंगले के कंगले ही।

यदि हमने जनसंख्या पर काबू न पाया तो हमारी सारी प्रगति धूल

जायेगी । "अभी तो हमारे सामने सवाल यह है कि हम किसी तरह आती हुई भीड़ को रोक सकें । भीड़ें एकदम आकाश से उतर रही है, पूरे मुल्क को भरती चली जायेंगी । अगर हमने पचास साल में हिम्मत न दिखायी तो हम अपने हाथ से मर सकते हैं । किसी एटम की, किसी हाइड्रोजन बम की हमारे ऊपर फेंकने की जरूरत न पड़ेगी । हमारा पापुलेशन एक्सप्लोजन ही हमारे लिए हाइड्रोजन बम बन जायेगा । वह जो जनसंख्या फूट रही है, वह हमारी मृत्यु बन सकती है । " 39

हमारे धर्मगुरु हमें उल्टी शिक्षा देते हैं । उनका कहना है कि बच्चे भगवान की देन है । "मजे की बात यह है कि जो धर्मगुरु समझाते हैं कि भगवान देता है बच्चे, वे यह नहीं समझाते कि बीमारी भी भगवान देता है, तो हमें इलाज नहीं करवाना चाहिए । " 40 बीमारी डाक्टर से दूर करवायेंगे और बच्चों की बात भगवान पर थोप देंगे । इस विषय में वे महात्मा गांधी और विनोबा भावे से भी सहमत नहीं है । वे दोनों महात्मा आत्म-संयम और ब्रह्मचर्य पर जोर देते हैं, परंतु वह अप्राकृतिक है । दूसरे भारत जैसे गरीब देश में जहां मनोरंजन के और साधन उपलब्ध नहीं है, गरीब व्यक्ति के पास आनंद-प्राप्ति का एक ही साधन रह जाता है और वह है सेक्स । अतः दो बच्चों के बाद आपरेशन ही एकमात्र श्रेष्ठ इलाज है इस वस्ती-विस्फोट को रोकने का ।

ओशो केवल यहां तक ही नहीं रुकते, वे तो और भी आगे जाते हैं । "हमें न केवल संतति पर नियमन करना पड़ेगा, हमें संतति वैज्ञानिक रूप से पैदा हो उसका विचार करना होगा । अंधे, लूले, लंगड़े, कोढ़ी, पंगु, बुद्धिभ्रष्ट, पागल, ये सब बच्चे पैदा करते जायें, यह सब बहुत खतरनाक है । यह सब बहुत महंगा है । यह तो सारी रेस को खराब करने की व्यवस्था है । हमें इसके लिए भी फिक्र करनी पड़ेगी कि दो व्यक्ति यदि विवाह करते हैं — तो विवाह तो कोई

भी व्यक्ति किसी से भी कर सकता है क्योंकि प्रेम के संबंध में कोई भी कानून नहीं लगाया जा सकता । लेकिन दो व्यक्ति अगर विवाह करते हैं तो विवाह के बाद उनको सर्टिफिकेट लेना ही चाहिए मेडिकल बोर्ड का कि वे बच्चे पैदा कर सकते हैं या नहीं । हर आदमी को बच्चा पैदा करने का हक बहुत खतरनाक है ; आगे ठीक नहीं है । साइंटिफिक ब्रीडिंग के लिए उचित नहीं है । क्योंकि कोई भी बच्चा पैदा करता है । एक आदमी सड़क पर भीख मांग रहा है, मस्तिष्क खराब है, पागल है, वह भी बच्चे पैदा करता है । तो हम आगे की रेस को खराब करते चले जाते हैं । हमारी प्रतिभा, शक्ति, सौन्दर्य नष्ट होता चला जाता है । वह हमें रोकना पड़ेगा । "[41]

ओशो ने इस दिशा में भी बड़े क्रांतिकारी विचार व्यक्त किये हैं और उनमें कई तो ऐसे हैं जो उन्होंने पचीस-तीस साल पहले व्यक्त किये थे औरअब विज्ञान वाले तथा दूसरे लोग उन पर आ रहे हैं । वे आर्टि-फिशियल इनसेमनेशन की भी बात करते हैं । किसीको इस पर आपत्ति हो सकती है । परंतु जब हम पशुओं की औलाद सुधारने के प्रयोग कर रहे हैं, अच्छी फसलों को उगाने के प्रयोग कर रहे हैं, तो मानव-औलाद को सुधारने के प्रयत्न क्यों नहीं करने चाहिए ?

ओशो इस संबंध में कहते हैं : " अब यह संभव है कि मैं मर जाऊं तो मेरे मरने के दस बारह साल बाद मेरा बेटा पैदा हो सके । इसमें कोई कठिनाई नहीं रह गयी । अब बाप की मौजूदगी बेटे के लिए जरूरी नहीं है । धीरे-धीरे अणु संरक्षित किये जा सकते हैं । इसका यह मतलब है कि अब हम श्रेष्ठतम व्यक्तियों के, आइंस्टीन के, या बुद्ध के या महावीर के वीर्य-अणु सुरक्षित कर सकते हैं । श्रेष्ठतम स्त्रियों के वीर्य-अणु सुरक्षित हो सकते हैं । और उन अणुओं से हम नये तरह के ज्यादा श्रेष्ठतम व्यक्तियों को जन्म दे सकते हैं । अब हर व्यक्ति को बच्चे पैदा नहीं करने चाहिए । "[42]

यहाँ पुरुष के "अहं" का सवाल उपस्थित हो सकता है । उसके भीतर जो हजारों वर्षों के संस्कार हैं उसका सवाल उपस्थित हो सकता है कि बच्चा मेरा और अणु किसी और का ? फिर वह बच्चा मेरा कैसे हुआ ? यह नहीं हो सकता । इसका उत्तर देते हुए ओशो कहते हैं :

"लेकिन मेरा बच्चा -- उसके लिए साइकिल कोई और बनाता है तो चढ़ता है । मेरा बच्चा -- गुड्डी कोई और बनाता है । मेरा बच्चा -- कपड़े कोई दर्जी सीता है । मेरा बच्चा -- दवाई कोई डाक्टर बनाता है । मेरा बच्चा -- शिक्षा कोई शिक्षक देता है । जब हम सारी बातों में किसी और से इन्तजाम करवा लेते हैं तो व्यक्ति का जो मौलिक अणु है वह मेरे बच्चे के लिए श्रेष्ठतम मिले यह जो बाप अपने बेटे को प्यार करता है, इसकी फिक्र करेगा -- करना चाहिए । अब यह संभव है । लेकिन आदमी की कठिनाई यह है कि विज्ञान जिसे संभव बना देता है, आदमी की बुद्धिहीनता के कारण वह सैंकड़ों वर्षों तक संभव नहीं हो पाता । अब संभव है कि मनुष्य की प्रतिभा बढ़ायी जा सके, बुद्धि बढ़ायी जा सके और श्रेष्ठतम, स्वस्थतम, सुंदरतम मनुष्य को पैदा किया जा सके । "[43]

## समाजवाद पर ओशो के विचार :

समाजवादी विचारधारा को हमारे यहाँ प्रगतिवादी विचारधारा भी कहा गया है । परंतु ओशो उसके पक्ष में नहीं है । और ओशो ने इसका विरोध तब किया था जब लगभग एक तिहाई विश्व पर समाजवाद का झण्डा लहरा रहा था । जब रूस एक महासत्ता था और जब समाजवादी होने के कई लाभ भी थे, विशेषतः लेखक या चिंतक कहे जाने वाले तबके में, जब समाजवादी कहलवाना एक फैशन में था, उस समय ओशो ने उसका विरोध किया था --

"समाजवाद अर्थात् आत्मघात । " [44]

लोग सामान्यतः यह सोचते हैं कि हमारे देश में समाजवाद नहीं आ सकता । ओशो कहते हैं कि उल्टे वह हमारे यहां जल्दी आ सकता है , क्योंकि समाजवाद के मूल में भौतिकवादी दृष्टि है । पांच हजार वर्षों से हम अध्यात्मवादी रहेxx रहे हैं और उसकी एकांगिता के कारण दुःख भोग रहे हैं , इसलिए एक एक्सट्रीम से दूसरी एक्सट्रीम की ओर जाने का खतरा ज्यादा है ।[45] ओशो कहते हैं कि समाजवाद केवल राजनीतिक दृष्टि होती तो उसके खतरे ज्यादा नहीं थे , परंतु वह तो एक समग्र जीवन-दर्शन होने का दावा करता है । यह जीवन-दर्शन मनुष्यता को विकास की ओर ले जानेवाला होता , तब भी ठीक होता , परंतु यह तो एकांगी जीवन दर्शन है । शंकराचार्य ब्रह्म को सत्य मानते हुए जगत को मिथ्या मानते हैं । यह भी एकांगी दृष्टिकोण है । बरअक्स इसके मार्क्स ब्रह्म को मिथ्या मानते हुए जगत को ही सत्य मानता है । मार्क्स मानता है जगत सत्य है , ब्रह्म असत्य है । विज्ञान सत्य है , धर्म अफीम का नशा है । परंतु यह भी एक आत्यंतिक विचारधारा है और मनुष्य को अंतिमों से बचना चाहिए , क्योंकि अंतिमों के अपने-अपने खतरे होते हैं । मनुष्य का विकास शरीर और चेतना के विकास में है । शरीर की भी उपेक्षा नहीं कर सकते , चेतना की भी उपेक्षा नहीं कर सकते । इस संदर्भ में ओशो कहते हैं :

"मैंने शंकराचार्य का जो विरोध किया है , उस विरोध में कार्ल मार्क्स का विरोध भी सम्मिलित है । मैं यह कह रहा हूं कि क्यों सिर्फ सिक्के के एक ही पहलू को स्वीकार करते हो और दूसरे पहलेx पहलू का इनकार ? और दूसरे का इन्कार करने में कोई वैज्ञानिकता नहीं है । कोई तर्क नहीं है । और उसके दुष्परिणाम दोनों ने भोगे हैं । पश्चिम दुष्परिणाम भोग रहा है कि धर्म तो खो गया है पश्चिम में । पदार्थ ही पदार्थ रह गया है । तो विज्ञान बहुत बढ़ा । विज्ञान ने तो अंबार लगा दिया खोजों का और आदमी की

आत्मा बिलकुल खो गयी । वस्तुएं इकट्ठी हो गयीं । आदमी खो गया । "[46]

ओशो के विचार से "भारत के लिए समाजवाद आत्मघात सिद्ध होगा, क्योंकि भारत वैसे ही आधा मर चुका है । और जो आधा बचा है वह दूसरे विकल्प को चुनकर मर सकता है । हमने आधी जिंदगी को पहले ही इनकार कर दिया था और आधी जिंदगी को इनकार करके हमने भूत-प्रेतों की जिंदगी स्वीकार कर ली थी — सिर्फ निराकार की , आकार को इनकार करके । अब दूसरा खतरा कर सकते हैं । "[47]

समाजवाद के भयस्थानों की ओर इंगित करते हुए ओशो कहते हैं : "एक आदमी तय करेगा कि समूह की इच्छा क्या है , एक आदमी तय करेगा कि समूह का मंगल क्या है ? एक आदमी तय करेगा कि समूह के हित में क्या है और हत्या व्यक्ति की की जा सकती है , और किसी भी व्यक्ति की की जा सकती है , उन्हीं व्यक्तियों की जिनके समूह के लिए सब आयोजित किया जा रहा है और एक-एक व्यक्ति में हम सब आ जाते हैं । "[48]

ओशो समाजवाद का अर्थ "राज्य-पूंजीवाद" करते हैं ।[49] उनके अनुसार समाजवाद का अर्थ है सम्पति व्यक्तियों के पास न रहकर राज्य के पास चली जाय । सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार हो । अतः उसमें और सामंतवाद में बहुत ज्यादा अंतर नहीं है । उसमें और सरमुखत्यार-शाही में ज्यादा फासला नहीं है । असल में पूंजीवाद ने मानवता के इतिहास में शायद पहली बार व्यक्ति को थोड़ी हैसियत दी थी । समाजवाद व्यक्ति की उस हैसियत को वापस छिन लेना चाहता है । जहां राजाशाही में पहले राजा थे , वहां इस समाजवाद में उनका स्थान राजनीतिज्ञ ग्रहण करेंगे । राजाओं के हाथ में इतनी ताकत कभी न थी जितनी समाजवाद राजनीतिज्ञ को देगा । [50] इसलिए ओशो कहते हैं कि समाजवाद भविष्य के लिए भयंकर गुलामी का सूत्रपात है ।

## पूंजीवाद और ओशो :

जहां दुनिया के तमाम लोग पूंजीवाद की बुराई करते हैं, साधु-संत जो पूंजीवादियों के साथ होते हैं, वे भी प्रकटतया उसका विरोध करते हैं, वहां ओशो पूंजीवाद का पक्ष लेते हुए उसे एक नैसर्गिक व्यवस्था बताते हैं।[51] ओशो कहते हैं कि आज तक मनुष्य को जो गलत बातें सिखायी गयीं उनमें एक गलत बात यह भी है अपने लिये जीना बुरा माना गया। अपने लिए जीना जैसे पाप है। अपने लिये जीने में जब तक हम किसी दूसरे का नुकसान नहीं करते तब तक कोई खराबी नहीं है। कोई भी आदमी अगर जिये तो सिर्फ अपने लिए ही जी सकता है और अगर दूसरे के लिए जीने भी निकलता है तो वह अपने लिए जीने की गहराई का परिणाम है, वह उसकी सुगन्ध है।[52]

पूंजीवाद के कारण व्यक्ति की हैसियत बनी है। पूंजीवाद के कारण दुनिया का विकास हुआ है। वस्तुतः समाजवाद भी तभी सफल हो सकता है, जहां पूंजीवाद अपने शिखर पर पहुंचा हो। अन्यथा बंटवारा किसका करोगे ? गरीबी का ? पूंजीवाद का विरोध ईर्ष्या का परिणाम है, परंतु यदि तमाम पूंजीपतियों की पूंजी गरीबों में बराबर-बराबर बांट दी जाये तो भी समस्या का समाधान होने वाला नहीं है। वस्तुतः पूंजीवाद ने ही वर्ण-व्यवस्था को तोड़ा है। पहले ब्राह्मण और क्षत्रिय ही श्रेष्ठ माने जाते थे। इस पूंजीवाद वह हर व्यक्ति श्रेष्ठ माना जाता है जिसके पास पूंजी है। फिर उसमें जात-पांत या धर्म-संप्रदाय नहीं देखा जाता है।

पूंजीवाद का अगर समुचित ढंग से विकास हो तो समाजवाद अपने आप आयेगा। पूंजीवाद में जो भ्रष्टाचार है, अनैतिकता है, ब्लेक-मार्केटिंग है, रिश्वत है, वह पूंजीवाद का परिणाम नहीं बल्कि पूंजी की कमी के कारण है। स्थितियों के कारण है। स्थितियां मनुष्य को नैतिक या अनैतिक बनाती हैं। ओशो के एक मित्र ने

पूछा कि बुद्ध , महावीर , कृष्ण , राम — वे सब तो त्याग की बात कर रहे हैं । वे तो कहते हैं , त्याग करो और आप कहते हैं , संपत्ति बढ़ाओ । इसके उत्तर में ओशो ने जो कहा था वह ध्यान देने योग्य है :

"मैं आपसे कहता हूं , संपत्ति बढ़ाओ । बुद्ध , राम , कृष्ण क्या कहते हैं पक्का तय करना मुश्किल है ; लेकिन अगर वे यह कहते हैं कि संपत्ति मत बढ़ाओ तो गलत कहते हैं । मजा तो यह है कि जिनके पास सम्पत्ति ही न हो वे त्याग क्या करेंगे ? बुद्ध कह सकते हैं कि त्याग करो । बुद्ध सम्पत्ति में पैदा हुए हैं । बुद्ध यशोधरा को छोड़कर जा सकते हैं , जंगल में बारह वर्ष तपश्चर्या के लिए । यशोधरा के लिए पीछे महल है और सब सुरक्षा है । अगर आज का कोई बुद्ध यशोधरा को छोड़कर जायेगा बारह वर्ष , तो बारह वर्ष के बाद यशोधरा चकले में मिलेगी , घर पर नहीं मिलेगी । और बुद्ध अपने बेटे राहुल को छोड़कर जा सकते हैं , लौटकर वह घर पर ही मिलता है ; किन्तु यदि आज छोड़कर जायेंगे तो किसी यतीमखाने में या बम्बई के किसी रास्ते पर भीख मांगता मिलेगा । पता लगाना मुश्किल होगा कि बेटा कहां है । बुद्ध के पास बहुत था । जिसके पास भी बहुत है वे छोड़ने की बात कर सकते हैं लेकिन दुर्भाग्य यह है कि जिनके पास बहुत है उनकी बात उन्होंने मान ली है जिनके पास कुछ भी नहीं है । "[53] इस देश के प्रायः सारे मनीषी धनवान घरों से आये और देश की सारी जनता दीन और दरिद्र रही ।

इसी बात को समझाते हुए ओशो कहते हैं : "लेकिन ध्यान रहे , महल को छोड़कर सड़क पर खड़ा होना एक अलग अनुभव है और सड़क पर ही खड़ा रहना हो और महल पर कभी न गये हों तो यह बिलकुल दूसरी स्थिति है । इसलिए बुद्ध भिखारी नहीं है , बुद्ध के भिखारीपन में भी एक सम्राट की हैसियत है और बुद्ध की xxxx चाल में एवं उनकी आंखों में भिक्षु का ख्याल कहीं भी नहीं है । मालकियत

है , वे छोड़कर आये हैं , वे ठुकराकर आये हैं । कुछ चीजें बेकार हो गयी हैं , और एक हम हैंजिन्होंने उन चीजों को जाना ही नहीं । बेकार नहीं हुई , भीतर प्राण कह रहे हैं कि महल मिल जाये , लेकिन न महल खोजने की ताकत है , न महल खोजने का श्रम करना है , न महल खोजने की बुद्धिमता जुटानी है । फिर हम कहते हैं , क्या करेंगे महल खोजकर ? जिनके पास महल था वे महल छोड़कर सड़कों पर भीख मांग रहे हैं । बेकार है महल , इस तरह हम अपने को समझा रहे हैं । "[54] पर वस्तुतः देखा जाये तो यह "छिः छिः अंगूर खट्टे हैं " वाली वृत्ति है ।

पूंजीवाद के संदर्भ में एक बड़ा अच्छा उदाहरण ओशो देते हैं : "मैंने सुना है , एक बार रथचाइल्ड के पास एक समाजवादी गया और उसने जाकर कहा कि तुमने सारे देश की संपत्ति हड़प कर ली है । बांट दो तो सारा देश अमीर हो जायेगा । रथचाइल्ड ने उसकी बात सुनी , कागज पर कुछ हिसाब लगाया और उससे कहा कि यह छह पैसे आपके हिस्से पड़ते हैं , आप लीजिए और जो जो आयेंगे उनके हिस्से जो पड़ता है , उनको देता जाऊंगा । मेरे पास जितनी संपत्ति है , अगर मैं सारी दुनिया में बांटूं तो एक-एक आदमी को छह-छह पैसे बांट दूंगा । जो भी आयेगा इनकार नहीं करूंगा , लेकिन क्या आप सोचते हैं कि ये छह पैसे आपको मिल जायेंगे तो समाजवाद आ जायेगा ? लेकिन रथचाइल्ड तो छह पैसे भी दे सकता था । बिड़ला, टाटा , साहू , डालमिया के पास छह पैसे भी नहीं हैं । हमारे पास पूंजीपति ही नहीं है , पूंजीपति बिलकुल अंकुरित हो रहा है । "[55]

वस्तुतः पूंजीवाद से ही समाजवाद आ सकता है । भविष्य में अमरिका समाजवाद की ओर बढ़ेगा और जितने भी समाजवादी देश हैं वे पूंजीवाद की ओर अग्रसर होंगे । समाजवाद एक बड़ी भ्रान्त बात समझा रहा है कि व्यक्ति को कोई कीमत नहीं है , जबकि एकमात्र कीमत

व्यक्ति की है । "आज सोशलिज्म के नाम से दुनिया में जो भी चल रहा है, वह स्टेट-कैपटिलिज्म है, वह राज्य-पूंजीवाद है और मैं मानता हूं कि राज्य-पूंजीवाद से व्यक्ति-पूंजीवाद श्रेष्ठ है । श्रेष्ठ इसलिए कि व्यक्ति स्वतंत्र है, श्रेष्ठ इसलिए कि प्रत्येक व्यक्ति को पूंजी पैदा करने की प्रेरणा है, श्रेष्ठ इसलिए है कि शक्ति विभाजित और विकेन्द्रित है, श्रेष्ठ इसलिए है कि संपत्ति अगर कल अतिरिक्त मात्रा में पैदा हुई तो समाजवाद आयेगा, आना चाहिए । लेकिन लाना नहीं है, आना चाहिए । लाया हुआ समाजवाद खतरनाक सिद्ध होगा । ... अगर समाजवाद को लाना हो तो पूंजीवाद के बीज को ठीक से सिंचित करने की जरूरत है । " 56

गांधीवाद और ओशो :

ओशो गांधी और गांधीवाद के कटु आलोचक थे । वे गांधी को तिथि-बाह्य मानते हैं । वे गांधी को यथास्थितिवादी मानते हैं । वे गांधी के दृष्टिकोण को अवैज्ञानिक मानते हैं । वे बार-बार आगाह करते हुए कहते हैं : " भारत के चालीस वर्ष खराब हुए । उसके पीछे कारण हैं । पहला कारण तो यह है कि महात्मा गांधी की जीवन-दृष्टि बहुत आदिम थी । विकासशील नहीं थी । चर्खे पर रुक गयी थी । चर्खे को भुलाना पड़ेगा, दफनाना पड़ेगा, समादर सहित । गांधी को आदर दो, क्योंकि उन्होंने देश की आजादी के लिए अथक प्रयास किया । लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि जो लोग देश की आजादी के लिए लड़ना जानते हैं, वे ही लोग देश का निर्माण भी करना जानते होंगे । ये दोनों अलग-अलग बातें हैं । "57

स्पष्ट है कि ओशो की नजर में देश की प्रगति के लिए गांधीवाद नाकाम रहा है, और आगे भी नाकाम रहेगा । गांधीवाद से अब कोई उम्मीद नहीं की जा सकती ।

ओशो दरिद्रता को एक बीमारी समझते हैं । अभिशाप समझते हैं । वे गरीबी को गौरवान्वित करने में नहीं मानते । उनका दृष्टिकोण अधिक वैज्ञानिक है , तर्कसंगत है , जीवनवादी है — " सारी ताकत लगानी चाहिए देश के औद्योगीकरण में । सारी ताकत लगानी चाहिए , देश के भीतर नये-नये उपकरण पैदा करने में । और अब उपकरण उपलब्ध है दुनिया में । इस देश की गरीबी मिट सकती है । कोई कारण नहीं है गरीबी के रहने का । लेकिन हम फिजूल की बकवास में लगे रहते हैं । हम चरखे की चिंता कर रहे हैं । चरखे से कहीं गरीबी मिटी है ? गरीबी मिटानी हो तो उद्योग की चिंता करो । मगर उद्योगों पर हम उपद्रव खड़े किये रखते हैं । जिन कारणों से गरीबी मिट सकती है उनको तो हर तरह की बाधाएं हैं । और जिन कारणों से गरीबी बढ़ेगी उनको क्र हर तरह की सुविधाएं दी जाती हैं । " 58

गांधी के अहिंसावाद के ढकोसले के खिलाफ डा. बाबासाहब अम्बेडकर हमेशा कहा करते थे कि गांधी की अहिंसा में भी हिंसा छिपी हुई है । ओशो तो सीधे-सीधे गांधी को हिंसक कहते हैं — "गांधी के जीवन में इतनी घटनाएं हैं जिनमें वे सर्वथा हिंसक है लेकिन अहिंसा का छाता सबकुछ छिपा लेता है । " 59

अनेक प्रसंगों में , अनेक व्याख्यानों में ओशो ने गांधी और गांधीवाद की शवपरीक्षा की है । गांधीजी का जीवन अनेक विरोधाभासों से भरा हुआ है । गांधीजी हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात करते हैं । परंतु जब "उनके सबसे बड़े बेटे हरिदास ने एक मुस्लिम स्त्री से विवाह कर लिया और मुसलमान बन गया तब महात्मा गांधी की सच्चाई की वास्तविक परीक्षा हुई और उसमें वे असफल हुए । उन्होंने अपनी स्त्री से कहा —" हरिदास अब कभी दोबारा मेरे घर में नहीं घुस सकता । और मैं जब भी मर जाऊं तो उसे देखना नहीं चाहता । " भारत में परंपरा है कि जब पिता की मृत्यु होती है तो सबसे बड़ा

चिता को अग्नि देता है । और गांधी का क्रोध ऐसा था कि उन्होंने अपनी वसियत में लिखवाया कि कि हरिदास उनकी चिता के पास भी नहीं फटक सकता । .... और सारा संसार समझता है कि वे बड़े शांत पुरुष थे । पूरा संसार समझता है कि वे महात्मा थे — एक महान आत्मा । " 60

ओशो और "सेक्स" :

ओशो सेक्स का स्वीकार करते हैं, सहे दिल से और खुले मन से करते हैं; और सारी दुनिया सेक्स को मानती है, पर ओशो में और दुनियावालों में फरक यह है कि ओशो उसका स्वीकार करते हैं, दुनियावाले उसकी निंदा भी करते हैं और करते भी जाते हैं । यह ढकोसलाबाजी ओशो में नहीं है । ओशो सेक्स को बुरा नहीं मानते । बल्कि सृष्टि का एक बहुत ही प्यारा कार्य मानते हैं । जब मनुष्य काम-क्रीडारत होता है तब वह सबकुछ भूल जाता है । ईगोलेस हो जाता है, टाइमलेस हो जाता है, और यही लक्षण है समाधि या ध्यान का । परंतु यह अनुभूति केवल कुछेक क्षणों की होती है, उसे दीर्घकालीन बनायी जा सकती है और उस पूरी प्रक्रिया को लेकर उनके जो व्याख्यान हैं वे "संभोग से समाधि तक" नामक उनकी बहुचर्चित पुस्तक में संकलित हैं । लोग उसे बिना पढ़े, बिना जाने-समझे ही ओशो को "सेक्स-गुरु" और न जाने क्या-क्या कहते रहे हैं । वस्तुतः ओशो दूसरे साधु-सन्तों की तरह ढोंगी नहीं है । मन में कुछ और मुंह में कुछ यह ओशो की फितरत नहीं है । "मन-मन भावै मुंडी हिलावै" यह ओशो की प्रकृति में नहीं है । ओशो जीवन को स्वीकारते हैं, आनंद को स्वीकारते हैं, जीवन के आनंद के माध्यम शरीर को स्वीकारते हैं । वे तो खुल्लमखुल्ला कहते हैं — "उत्सव आमार जाति आनंद आमार गोत्र ।" वे सूत्र देते हैं — नाचो, गाओ और उत्सव मनाओ । इसे वे संसार-सूत्र कहते हैं, संन्यास-सूत्र कहते हैं । वे कहते हैं जीवन गीत है, जीवन नृत्य है, जीवन आनंद है ।

और इसलिए आनंद के महास्रोत सेक्स का वे विरोध कैसे कर सकते हैं ? हमारे यहां इन बातों को माननेवाले चार्वाकों और लोकायतों की एक पूरी परंपरा रही है । चार्वाक कोई एक व्यक्ति नहीं है, बल्कि एक पंथ है, सम्प्रदाय है, वर्ग है, स्कूल है । "चार्वाक बनता है चारु + वाक् से । चार्वाक का अर्थ होता है -- मधुर वचन वाले लोग, जिनके वचन बड़े मधुर थे और चार्वाकों ने बड़ी मधुर बात कही थी । चार्वाकों ने कहा था : यही पृथ्वी सबकुछ है, कहीं कोई और स्वर्ग नहीं । यही जीवन सबकुछ है, कहीं कोई और जीवन नहीं । इसे भोगो, इसे आनंद-उत्सव बनाओ । नाचो, गाओ, इसके पार कुछ भी नहीं है । और कोई परमात्मा नहीं है, यही जीवन सबकुछ है । " 61

परंतु ओशो चार्वाक को स्वीकार करते हुए भी चार्वाक-दर्शन को अंतिम नहीं मानते । वे तो कहते हैं कि यह तो बुनियाद है । यह भौतिकता, यह नास्तिकता बुनियाद है । इसी बुनियाद पर जो भवन खड़ा होगा उस पर शिखर आस्तिकता का होगा, आध्यात्मिकता का होगा । वस्तुतः ओशो चार्वाक को स्वीकार करते हैं, पर चार्वाक पर रुकते नहीं है । चार्वाक उनकी चिंतन-यात्रा का प्रस्थान-बिन्दु है । ठीक उसी प्रकार ओशो "सेक्स" का खुले दिल से स्वीकार करते हैं, परंतु वे उसे भी समाधि-योग का प्रस्थान-बिन्दु ही मानते हैं और उससे ऊपर उठने की बात करते हैं । वे स्थूल से सूक्ष्म की तरफ जाने को कहते हैं । वे शरीर से आत्मा की तरफ जाने को कहते हैं । वे शराब से भक्ति के अमृत की तरफ जाने को कहते हैं । वे पूंजीवाद से समाजवाद की ओर जाने को कहते हैं । और इन बातों को न समझ पाने के कारण बहुत से लोग, नादान और नासमझ लोग, कम-अक्ल लोग, या अक्ल ही अक्ल वाले लोग, या भावना ही भावना वाले लोग, ओशो को समझने में गलती करते हैं । वस्तुतः ओशो को समझना टेढ़ी खीर है । एक पूरी जिन्दगी चाहिए उसके लिए । कई बार तो ऐसा लगता है कि ओशो की बातों से नहीं, बल्कि ओशो

जिनके बारे में बातें करते हैं उनसे उनके विचारों के कुछ सूत्र पकड़े जा सकते हैं । ओशो लाओत्से की बात करते हैं । लाओत्से कहता है : "लोग अपने भोजन में रस लें ; अपनी पोशाक सुंदर बनाएं । अपने घरों में संतुष्ट रहें । अपने रीति-रिवाज का मजा लें । " 62 इस प्रकार लाओत्से के माध्यम से ओशो कहते हैं कि भरपूर रस लो जीवन का , क्योंकि वही तुम्हारे चेतना-भवन की बुनियाद में रहेगा । महाप्रेमी ही , महा इश्की ही , महा भक्त हो सकता है ।

कज़ानज़ाकीस इस सदी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारों में एक है । चर्च ने उसे बहुत सताया । अंततः जब उसने "ज़ोरबा दि ग्रीक " लिखा , तो चर्च ने उसे निष्कासित कर दिया । इस उपन्यास के नायक "ज़ोरबा" के विषय में ओशो कहते हैं : "ज़ोरबा प्यारा आदमी है । न नर्क का भय , न स्वर्ग का लोभ । पल-पल जीता है , छोटी-छोटी बातों में रस लेता है ... भोजन , शराब , स्त्रियां । दिन भर काम करने के बाद वह अपना साज {संतूरी} उठा लेगा और समुद्र के किनारे घण्टों नाचता रहेगा । " 63 उसका मालिक कज़ानज़ाकिस धनी है , परंतु उदास , चिंतित , बोझिल और दुःखी रहता है । एक बार ज़ोरबा अपने मालिक से कहता है -- " बोस , तुममें एक ही भूल है , तुम बहुत सोचते हो । मेरे साथ आओ । " और ज़ोरबा उसे खींचकर समंदर के किनारे ले गया और संतूरी बजाने लगा । उस दिन ज़ोरबा की सोहबत में कज़ानज़ाकिस पहली बार नाचा । जिंदगी में पहली बार उसे लगा कि वह जिंदा है । इस ज़ोरबा को उसका मालिक एक बार तीन दिन के लिए किसी शहर में कुछ चीजों को खरीदकर लाने के लिए भेजता है । ज़ोरबा सारे पैसे शराब और स्त्रियों में उड़ा देता है और तीन हफ्तों बाद वापस लौटकर वहां की शराब और बुबुलिनों {सुंदर स्त्रियों } की बात करता है । इस प्रकार ज़ोरबा का पूरा जीवन साधारण , शारीरिक सुखों का जीवन है । उसमें न कोई तनाव है , न अपराधभाव है , न कोई पाप-पुण्य

का भाव है । "[64]

ओशो ने जिस नये मनुष्य की परिकल्पना की है, उसे उन्होंने नाम दिया है — ज़ोरबा दि बुद्धा । इस नाम में बुद्ध प्रतीक है आंतरिक समृद्धि के और ज़ोरबा है प्रतीक भौतिक समृद्धि का [65]ज़ोरबा नौकर है पर सम्राट की ज़िन्दगी जीता है और क़ज़ानज़ाकिस मालिक है, पर नौकर जैसी ज़िन्दगी जीता है । ओशो मानवता के विकास के लिए दोनों को आवश्यक मानते हैं — ज़ोरबा को भी और बुद्ध को भी । अब ओशो का "सेक्स-विषयक" दृष्टिकोण समझ में आ सकता है । ओशो "सेक्स" को स्वीकारते हैं, पर उससे ऊपर उठने के लिए । उस ऊर्जा को कहीं अन्यत्र, और बड़x बड़े आनंद में लगाने के लिए ।

## ओशो का प्रेम-विषयक दृष्टिकोण :

इस ढाई अच्छर के शब्द पर तो ओशो कबीर की भाँति बहुत बरसे हैं । प्रेम ही जीवन है । प्रेम ही मानव-धर्म है । प्रेम ही प्रभु है । समग्र अस्तित्व प्रेममय है । प्रेम के साथ चलना सहज होना है । प्रेम के विरुद्ध चलना अप्राकृतिक होना है । जो प्रेमी होगा वह सीधा होगा, सरल होगा, सहज होगा । परंतु यह सरल मार्ग ही कठिन है । खडक की धार है । आग का दरिया है । क्योंकि उसमें देना ही देना है । उसमें हिसाब नहीं । जहां हिसाब आया कि प्रेम गायब । उसमें स्वार्थ नहीं । जहां स्वार्थ आया कि प्रेम गायब । उसमें भरोसा ही भरोसा है । विश्वास ही उसकी सांस है । विश्वास गया कि प्रेम गया । उसका संबंध मस्तिष्क से कम हृदय से ज्यादा है । प्रेम सत्य है, प्रेम शिव है, प्रेम सुंदर है । अनेक स्थानों पर, अनेक बार, ओशो ने इस प्रेम-तत्त्व के बारे में कहा है, अतः विस्तार-भय से यह चर्चा यहां समाप्त करते हैं, हालांकि प्रेम-चर्चा कभी समाप्त हो नहीं सकती ।

## प्राचीन तथा अर्वाचीन कुछ महानुभावों के संदर्भ में ओशो के विचार :

ओशो ने अपने पूरे जीवन-काल में अनेक व्याख्यानों में अनेक प्रसंगों तथा व्यक्तियों के संदर्भ में कई-कई प्रकार की बातें की हैं । कहीं-कहीं उनके वक्तव्यों में कुछ लोगों को अन्तर्विरोध भी दीख सकता है, क्योंकि कई बार वे किसी महापुरुष को आकाश पर बिठा देते हैं, परंतु कोई अन्य प्रसंग में, किसी अन्य संदर्भ में उसे जमीन पर भी ला पटकते हैं । अनेक वक्तव्यों में, व्याख्यानों में कृष्ण की भूरि-भूरि प्रशंसा करने वाले ओशो ने कृष्ण को हिंसा का पुजारी[66], लंपट [67], स्त्रियों का घोर अपमान करनेवाला[68], सांड से बदतर[69], तथा गीता को हिंसा का शास्त्र [70] वगैरह कहा गया है ।

ठीक इसी तरह अनेक स्थानों पर राम और रामराज्य की भी अच्छी खबर ओशो ने ली है । रामराज्य की अनेक विसंगतियों का पर्दाफाश उन्होंने किया है ।[71] राम तथा लक्ष्मण ने सूर्पणखा के साथ जो अभद्र व्यवहार किया, उसकी भी बड़े कड़े शब्दों में भर्त्सना उन्होंने की है ।[72] राम के शूद्र-विरोध की कड़ी निंदा करते हुए वे कहते हैं : " रामराज्य में शूद्रों को हक नहीं था वेद पढ़ने का । यह तो कल्पना के बाहर थी बात कि डा अम्बेडकर जैसा शूद्र — और राम के समय में भारत के विधान का रचयिता हो सकता था । असंभव । खुद रामने एक शूद्र के कानों में सिसा पिघलवा कर भरवा दिया था — गरम सिसा, उबलता हुआ सिसा, क्योंकि उसने चोरी से कहीं वेद-मंत्र पढ़े जा रहे थे, वे चोरी से सुन लिये थे । यह उसका पाप था, यह उसका अपराध था और राम तुम्हारे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं । राम को तुम अवतार कहते हो । और महात्मा गांधी रामराज्य फिर से लाना चाहते थे । क्या करना है ? शूद्र के कानों में सिसा पिघलवाकर भरवाना है ? " [73] राम द्वारा हुए अहल्या के

उद्धार की भी वे खिल्ली उड़ाते हैं । [74]विडम्बना भी कैसी है कि इन्द्र द्वारा दूषित अहल्या का तो राम उद्धार करते हैं, परंतु रावण द्वारा अपहरित किन्तु अदूषित सीता को वे ही राम त्याग देते हैं । रावण-वध के उपरांत राम का सीता के साथ का व्यवहार भी उचित नहीं कहा जा सकता :

"और राम का व्यवहार स्त्रियों के साथ अच्छा नहीं है । मर्यादा-पुरूषोत्तम होंगे, मगर स्त्रियों को कतई उन्हें मर्यादा पुरूषोत्तम नहीं मानना चाहिए । क्योंकि सीता को जब लंका से छीनकर लाये, तो जो पहले शब्द सीता से बोले, अभद्र है । पहले शब्द उन्होंने ये कहे कि सीता, यह तू ध्यान रख, हे औरत तू, ठीक से पहचान ले कि मैंने तेरे लिए युद्ध नहीं किया है । यह तो अपने वंश की प्रतिष्ठा के लिए युद्ध किया । हम जैसे पुरुष स्त्रियों के लिए नहीं लड़ते ।" [75]

ओशो सतयुग को बकवास कहते हैं । [76] परशुराम को मातृहन्ता कहते हैं ।[77] हिन्दुओं की युग-कल्पना में वे कलियुग को ही श्रेष्ठ बताते हैं ।[78] वेदों के संदर्भ में ओशो कहते हैं कि उनमें केवल दो प्रतिशत दर्शन है । 98 प्रतिशत एकदम कचरा है, लेकिन वह दो प्रतिशत इतना मूल्यवान है कि शेष 98 प्रतिशत मूल्यवान हो गया है । [79] वेदों के निन्यानबे प्रतिशत सूत्र भौतिकवादी हैं, इतने भौतिकवादी कि भौतिकवादी भी शरमा जाएं । ऐसी-ऐसी प्रार्थनाएं वेदों में हैं कि मेरी गऊ के थनों में दूध बढ़ जाये और दुश्मन की गऊ के थनों का दूध सूख जाये । क्या धार्मिक बातें हो रही हैं । [80] ओशो ने अनेक प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया है कि वैदिक समय में गोहत्या होती थी । अश्वमेध, गौमेध, नरमेध जैसे यज्ञ होते थे ।[81] निलामियों में सुंदर लड़कियों को खरीदा जाता था ।[82]

ओशो वेदों के विज्ञान को कपोल-कल्पित कहते हैं । संस्कृत को जालसाजों की भाषा कहते हैं । इस संदर्भ में वे कहते हैं : "संस्कृत

से क्या लेना-देना है ? तुम सोचते हो महावीर को संस्कृत आती थी ? लेकिन क्या हुआ वैसा कोई ज्ञानी ? हुआ वैसा कोई अनुभव को उपलब्ध ? महावीर बोले हैं प्राकृत में । बुद्ध को संस्कृत नहीं आती थी । लेकिन हुआ वैसा कोई जलता हुआ सूर्य पृथ्वी पर दूसरा ? वैसी अग्नि किससे प्रकट हुई ? वैसी ज्योति । बेजोड़ अद्वितीय ... बुद्ध तो पाली में बोले । कबीर को संस्कृत नहीं आती थी , न गोरख को , न नानक को , न रैदास को , न मलूक को , न रामकृष्ण को , न रामतीर्थ को । संस्कृत से क्या लेना-देना ? " 83

हिन्दुओं के । जो अपने धर्म का घमण्ड है कि वह अति प्राचीन है , उसकी भी आलोचना ओशो करते हैं । " हिन्दू धर्म का यही दुर्भाग्य है कि यह सबसे पुराना धर्म है , पृथ्वी पर । इसलिए उसकी सड़ांध गहरी है । यह भूल ही गया , नया होना । " 84

महाभारत के भीष्म , द्रोणाचार्य आदि पात्रों की भी वे भर्त्सना करते हैं । इधर पूना-पैक्ट के मामले में ओशो बार-बार गांधी को कोसते रहे हैं और तब उनकी चपेट में द्रोणाचार्य भी बार-बार आ जाते हैं — " द्रोणाचार्य की इतनी प्रशंसा है महाभारत में , उनको महागुरु कहा गया है , और इनसे ज्यादा छलवाला आदमी खोजना कठिन है । इसने एकलव्य को इन्कार कर दिया शिक्षा देने से , क्योंकि एकलव्य शूद्र है ? ... [उनकी] अर्जुन पर बड़ी आशा थी, क्योंकि अर्जुन उनका श्रेष्ठ धनुर्धर था । और जब यह खबर आयी कि अर्जुन भी एकलव्य के सामने कुछ नहीं है तो यह तथाकथित महान गुरु , यह महान ब्राह्मण , यह राजपूतों को धनुर्विद्या सिखाने वाला , महाभारत में जिसकी प्रशंसा ही प्रशंसा है , यह दक्षिणा लेने पहुंच गया , उस शिष्य के पास , जिसको कभी इसने दीक्षा दी ही नहीं थी । अब बेईमानी की भी कोई सीमा होती है , छल और पाखण्ड का भी कोई अन्त है । जिसको दीक्षा नहीं दी , उससे दक्षिणा लेने जाना , शर्म भी न आयी । .... मुझे एकलव्य मिल

गया होता , तो कहता —" थूक इस आदमी के मुंह पर , जी भर के थूंक । इसको पिकदानी समझ । यही इसकी दक्षिणा है । यह शूद्र है, तू ब्राह्मण है । इसकी छाया भी पड़ जाये तो स्नान कर । " • 85

ओशो मनुस्मृति की भर्त्सना करते हुए कहते हैं : " मनुस्मृति स्पष्ट कहती है कि अगर कोई उच्च वर्ण का व्यक्ति — किसी ब्राह्मण , किसी क्षत्रिय , किसी वैश्य को अगर किसी शूद्र की कन्या जम जाएं तो वह विवाह कर सकता है । लेकिन कोई शूद्र किसी उच्च वर्ण की कन्या से विवाह नहीं कर सकता । अधिकतर झगड़े इसलिए खड़े होते हैं । ... तुम मनुस्मृति को जब तक सिर पर रखे हुए हो , तब तक ये दंगे-फसाद जारी रहेंगे । मनुस्मृति कहती है कि शूद्र की हत्या करने में कोई पाप नहीं है । एक गऊ को मारने में भी महापाप है , लेकिन एक शूद्र को मारने में कोई पाप नहीं है । शूद्र अगर पापी न हो तो भी उसे मारने में पुण्य है , और पापी ब्राह्मण को भी मारने में पाप है । आदमी-आदमी में ऐसा भेद करने वाले शास्त्रों को क्या तुमने इनकारा ? .... छोटे-छोटे झगड़े हैं , दुनिया हंसती है । कोई शूद्र ने कोई उच्चवर्णीय कुएं से पानी भर लिया , बस झगड़ा हो गया । कोई शूद्र मंदिर में चला गया , झगड़ा हो गया । ऐसी मनुस्मृति पर आधारित रामायण और उसका रामराज्य अछूत-शूद्रों के लिए नरक नहीं तो और क्या हो सकता है ? " 86

ऐसे तो हिन्दू शास्त्र और परंपरा के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं । केवल इस विषय को लेकर भी अलग से शोधकार्य संपन्न हो सकता है । अंत में निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि प्रत्येक विषय पर ओशो की एक अपनी अलग दृष्टि होती है । उनके अपने विचार होते हैं । वे यह कभी नहीं कहते कि तुम उनकी बातों को मान लो , स्वीकार लो । वे कहते हैं हर विषय पर तुम अपने ढंग से सोचो । सोचना मनुष्य का धर्म है । गतानुगतिकता बुरी चीज है । दुनिया में जितना भी विकास हुआ है वह सोचनेवाले लोगों के कारण हुआ है ।

===== XXXXX =====

## :: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ स्वर्ण पाखी था कभी और अब है भिखारी जगत का : पृ. 1 ।

§2§ वही : पृ. 2 §3§ वही : पृ. 3-4 ।

§4§ वही : पृ. 7 §5§ वही : पृ. 13 ।

§6§ वही : पृ. 15 §6§ वही : पृ. 17 ।

§8§ वही : पृ. 19-20 §9§ वही : पृ. 19 ।

§10§ वही : पृ. 20 §11§ वही : पृ. 21-22 ।

§12§ शिक्षा में क्रांति : फ्लेप से ।

§13§ वही : द्वितीय फ्लेप से ।

§14§ वही : भूमिका से §15§ वही : पृ. 49-50 ।

§16§ वही : पृ. 51 §17§ वही : पृ. 50 ।

§18§ वही : पृ. 406-407 §19§ वही : पृ. 408-409 ।

§20§ वही : पृ. 410 §21§ वही : पृ. 410-411 ।

§22§ वही : पृ. 411 §23§ वही : पृ. 90 ।

§24§ वही : पृ. 90 §25§ वही : पृ. 90 ।

§26§ वही : पृ. 91 §27§ वही : पृ. 93 ।

§28§ वही : पृ. 92 §29§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 94-95 ।

§30§ वही : पृ. 95 §31§ वही : पृ. 97 ।

§32§ डा. अम्बेड्कर और ओशो : संदेश भालेकर : लेखक का मंतव्य : पृ. 5 ।

§33§ वही : पृ. 21 §34§ रजनीश बाइबल : भाग-3 :पृ. 166

§35§ वही : पृ. 166 §36§ ओशो टाइम्स :11-7-88 : पृ. 3

§37§ वही : पृ. 3 §38§ वही : पृ. 3 ।

§39§ भारत के जलते प्रश्न : पृ. 83

§40§ वही : पृ. 82 §41§ वही : पृ. 82 ।

§42§ वही : पृ. 82 §43§ वही : पृ. 82-83 ।

§44§ भारत के जलते प्रश्न : पृ. 157 ।

§45§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 157 ।

§46§ ज्यूं था त्यूं ठहराया : पृ. 275 ।

§47§ भारत के जलते प्रश्न : पृ. 159 ।

§48§ वही : पृ. 169 ।

§49§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 173 ।

§50§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 174-175 ।

§51§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 115 ।

§52§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 115 ।

§53§ वही : पृ. 120-121 ।

§54§ वही : पृ. 121 ।

§55§ वही : पृ. 94 ।

§56§ वही : पृ. 97 ।

§57§ फिर पत्तों की पाजेब बजी : पृ. 16 ।

§58§ हंसा तो मोती चुगै : पृ. 152 ।

§59§ ॐ मणि पद्मे हुम : पृ. 56 ।

§60§ ओशो टाइम्स : 11-8-88 : पृ. 23 ।

§61§ ओशो टाइम्स : अगस्त : 1997 : पृ. 17 ।

§62§ वही : पृ. 25 ।

§63§ वही : पृ. 30 ।

§64§ वही : पृ. 30 ।

§65§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 31 ।

§66§ पीवत राम रस लगी खुमारी : पृ. 57 ।

§67§ फिर अमरीत की बूंद पड़ी : पृ. 60 ।

§68§ पीवत राम रस लगी खुमारी : पृ. 75 ।

§69§ रिनज़ाई : द मास्टर आफ द ईरेशनल : पृ. 49 ।

§70§ फिर अमरीत की बूंद पड़ी : पृ. 79 ।

§71§ द्रष्टव्य : डा. अम्बेडकर और ओशो : संदेश भालेकर : पृ. 62-64

§72§ द्रष्टव्य : आपुइ गयी हिराय : पृ. 11 ।

§73§ अनहद में बिसराम : पृ. 197 ।

§74§ द्रष्टव्य : आपुइ गयी हिराय : पृ. 187 ।

§75§ वही : पृ. 187 ।

§76§ द्रष्टव्य : बहुतेरे हैं घाट : पृ. 76 ।

§77§ पीवत राम रस लगी खुमारी : पृ. 55 ।

§78§ वही : पृ. 74 ।

§79§ फिर अमरीत की बूंद पड़ी : पृ. 108 ।

§80§ ज्यूं था त्यूं ठहराया : पृ. 288 ।

§81§ वही : पृ. 288 ।

§82§ ॐ मणि पद्मे हुम : पृ. 66 ।

§83§ सुमिरण मेरा हरि करै : पृ. 127 ।

§84§ ज्यूं था त्यूं ठहराया : पृ. 10 ।

§85§ बहुतेरे हैं घाट : पृ. 120-121 ।

§86§ साहेब मिल साहेब भये : पृ. 47 ।

====== xxxxxxx ========